अनुक्रमणिका ।

वैराग्यप्रकरण

मुमुक्षुप्रकरण ।

७ ७७

सर्गांक	विषय			पृष्ठांक
१	शुकनिर्वाण वर्णन	...	...	१४२
२	विश्वामित्रोपदेशवर्णन	...	...	१४७
३	असंख्यसृष्टिप्रतिपादनवर्णन	...	...	१५१
४	पुरुषार्थोपक्रमवर्णन	...	...	१५४
५	पुरुषार्थवर्णन	...	...	१५७
६	परमपुरुषार्थवर्णन	...	...	१६२
७	पुरुषार्थोपमावर्णन	...	...	१६५
८	परमपुरुषार्थवर्णन	...	...	१७०
९	परमपुरुषार्थवर्णन	...	...	१७३
१०	वसिष्ठोत्पत्ति तथा वसिष्ठोपदेशागमनवर्णन			१७७
११	वसिष्ठोपदेशवर्णन	...	...	१८२
१२	तत्त्वज्ञमाहात्म्यवर्णन	...	...	१८६
१३	शमवर्णन	...	...	१९४
१४	विचारवर्णन	...	...	२०४
१५	संतोषवर्णन	...	...	२१२
१६	साधुसंगवर्णन	...	...	२१५
१७	षट्प्रकरणवर्णन	...	...	२२०
१८	दृष्टांतप्रमाणवर्णन	...	...	२२६
१९	ज्ञानप्राप्तिवर्णन	...	...	२३८

श्रीपरमात्मने नमः

अथ श्रीयोगवासिष्ठ.

वैराग्य प्रकरण—प्रारंभ

प्रथमः सर्गः १,

।।1। अथ कथारंभवर्णन,

सत् चित् आनंदरूप जो आत्मा है तिसको नमस्कार है। कैसा है सत् चित् आनंदरूप, सो कहते हैं जिससे यह सर्व भासते हैं, अरु जिसविषे यह सर्व लीन होते हैं, अरु जिसविषे सब स्थिर होते हैं, तिस सत्य आत्माको नमस्कार है। ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय, द्रष्टा, दर्शन, दृश्य, कर्त्ता, करण, क्रिया जिस करके सिद्ध होते हैं, ऐसा जो ज्ञानरूप आत्मा है तिसको नमस्कार है, जिस आनन्द के समुद्रके कण-करि संपूर्ण विश्व आनंदवान् है, अरु जिस आनं-दकरि सब जीव जीते हैं, तिस आनंदरूप आत्मा-को नमस्कार है।

कोऊ एक सुतीक्ष्ण अगस्त्यका शिष्य होता भया तिसके मनमें एक संशय उत्पन्न भया, तिसको निवृत्त करनेके अर्थ अगस्त्यमुनि के आश्रम को गमन किया

जायकर विधिसंयुक्त प्रणाम करि स्थित भया, औ नम्रताभावसों प्रश्न करता भया।

सुतीक्ष्ण उवाच-हे भगवान् ! सर्वतत्वज्ञ, सर्व, शास्त्रों के ज्ञाता, एक संशय मुझको है, सो तुम कृपा करके निवृत करो, जो मोक्षका कारण कर्महै अथवा ज्ञान है, अथवा, दोनों हैं ? जो मोक्षका कारण होय सो कहो।

अगस्त्य उवाच-हे ब्रह्मण्य ! केवल कर्म मोक्षका कारण नहीं; औ केवल ज्ञानतें भी मोक्ष प्राप्त नहीं होता दोनों करके मोक्षकी प्राप्ति होती है, कर्म करके अंतःकरण शुद्ध होता है, मोक्ष नहीं होता अरु अंतःकरण शुद्धि विना केवल ज्ञान तेंभी मुक्ति नहीं होती, अर्थयह जो शास्त्रहूका अर्थ तात्पर्य ज्ञानका निश्चय, अंतःकरण शुद्धि हुएविना ज्ञानकी स्थिति नहीं होती, तातें दोनों करि मोक्षकी सिद्धि होती है, कर्म करके प्रथम अंतःकरण शुद्धि होती है, बहुरि ज्ञान उपजता है, तब मोक्ष सिद्धि होतीहै, जैसे दोनों पक्षकरके पक्षी आकाशमार्गको सुख सों उडता है, तैसे कर्म अरु ज्ञान दोनोंकर मोक्षकी सिद्धता होती है, हे ब्रह्मण्य ! इस अर्थके अनुसार एक पुरातन इतिहास है, सो तू श्रवण कर।

एक कारणनाम ब्राह्मण अग्निवेश का पुत्र था, सो गुरुके निकट जायकर चार वेद षडंगसहित अध्ययन करत भया, अध्ययन करके बहुरि गृह में

आसक्त भया, औ कर्मतें रहित होयकर तूष्णीं स्थित रहा, अर्थ यह, जो संशयसंयुक्त कर्मतें रहित भया, तब पिताने देख्या जो यह कर्मतें रहित होकर स्थित भया है, ऐसा देखिके इस प्रकार कहत भया।

अग्निवेश उवाच–हे पुत्र! कर्मकी पालना क्यों नहीं करता? औ तूं कर्म के अकरनेतें सिद्धताको कैसे प्राप्त होवेगा। जिसकर तूं कर्म तें रहित हुआ है सो कारण कहि दे।

कारण उवाच–हे पिता! एक संशय मुझको उत्पन्न हुआ है, तिस करके मैं कर्मतें तूष्णीं रहा हूं, सो श्रवण करो, वेदमें एक ठौर कहा है जो जबलग जीता रहै तबलग कर्म को करना, जो अग्निहोत्रादिक कर्म हैं सो करता ही रहै, अरु और ठौर कहा है, जो न धनकरिके मोक्ष होता है, न कर्मकरिके मोक्ष होता है, न पुत्रादिक करके मोक्ष होता है, न केवल त्यागतें मोक्ष होता है, इन दोनोंविषें मुझको क्या कर्तव्य है, यह संशय है सो तुम कृपा करके कहो क्या कर्तव्य है।

अगस्त्य उवाच–हे सुतीक्ष्ण! ऐसे जब कारणनें पिताको कहा, तब तिसका वचन सुनकर अग्निवेश कहता भया।

अग्निवेश उवाच–हे पुत्र! एक कथा मुझतें श्रवण कर, जो पहिले हुई है, तिसको सुनकर हृदय के विषे

धरिके आगे जो तेरी इच्छा होय सोई करना।

एक सुरुचि नाम अप्सरा थी, सो कैसी थी, जो जेती कछु अप्सरा हैं, तिनविषे उत्तम थी, सो एक कालमें हिमालय के शिखर ऊपर बैठी थी, सो हिमालय पर्वत कैसा है, को कामना करके संतप्त जिनके हृदय हैं, ऐसे देवता अरु किन्नरके गण तहां अप्सरा के साथ क्रीड़ा करते हैं, बहुरि कैसा है, जहां गंगा जी का प्रवाह लहरी देत चला आता है, सो गंगा कैसी है, जो महापवित्र जल है, जिसका ऐसे शिखर पर सुरुचि अप्सरा बैठी थी, तिसनें इन्द्र का दूत अंतरिक्षतें चला आवता देखा, जब निकट आया तब तिसको कहा, अहो सौभाग्य देवदूत ! तूं देवता में श्रेष्ठ है, तूं कहातें आया, औ अब कहां जायगा? सो कृपा करके कहदे।

देवदूत उवाच—हे सुभद्रे ! तैंने पूछया है। सो श्रवण कर, अरिस्टनेमि एक राजर्षि था, तिसनें अपने पुत्रको राज देकर वैराग्य लिया. संपूर्ण विषयोंका अभिलाष त्याग करके, गंधमादनपर्वत में जायकर तप करने लगा अरु धर्मात्मा था, तिसके साथ मेरा एक कार्य था, सो कार्य करके मैं अब इंद्रपास चला जाता हौं. तिसका मैं दूत हौं, संपूर्ण वृत्तांत निवेदन करने को चला हौं,

अप्सरोवाच—हे भगवन्! यह वृत्तांत कौनसा है सो मोको कहौ, मेरे को तूं अति प्रिय है, यह जानकर पूछती हौं, औ जो महापुरुष हैं तिनको कोई प्रश्न करता है तब उद्वेगतें रहित होकर उत्तर कहते हैं, तातें तूं कहिये,

देवदूत उवाच—हे भद्रे! जो वृत्तांत है सो सुन. विस्तारकरके मैं तुमको कहता हौं. वह राजा गंधमादन पर्वतमें तप करने लगा, अरु वहां तप किया, तब देवता का राजा जो इन्द्र है, तिसने मुझको बुलायकर आज्ञा करी जो, हे दूत! गंधमादनपर्वत विषे विमान औ अप्सरा औ नानाप्रकारकी सामग्री, अरु गंधर्व, यक्ष, सिद्ध, किन्नर ताल मृदंग, आदि वादित्र संग ले जा, सो गंधमादन पर्वत कैसा है, जो नानाप्रकारकी लता वृक्षकरके पूर्ण है तहां जायके राजाको विमानपर बैठायके इहां ल्याव, हे सुंदरि! जब इंद्रने ऐसा कहा, तब मैं विमान अरु सामग्रीसहित जहां राजा था तहां आया, अरु मैं राजा को कहा, हे राजन्! तेरे कारण विमान ले आया हौं, तापर आरूढ होकरतूं स्वर्गको चल, औ देवतानके भोग भोगु, जब मैंने ऐसें कहा तब मेरा वचन सुनकर राजा बोलत भया।

राजोवाच—हे देवदूत! प्रथम स्वर्गका वृत्तांत तूं मुझ को कहि दे, जो तेरे स्वर्ग में दोष कहा अरु गुण कहा है, तिनको सुनिके मैं हृदयमें विचारौं, पाछे जो मेरी इच्छा होवैगी तो आऊंगा।

देवदूत उवाच—हे राजन् ! स्वर्गमें बडे दिव्य भोग हैं सो स्वर्ग बडे पुण्यसे जीव पाता है, जो बडे पुण्यवाले होते हैं सो स्वर्गके उत्तम सुख पाते हैं, जो मध्यमपुण्यवाले हैं सो स्वर्गके मध्यम सुख पाते हैं, अरु कनिष्ठपुण्यवाले हैं सो स्वर्गके कनिष्ठसुख पाते हैं, यह जो गुण स्वर्गमें हैं सो तोकों कहे,

औ स्वर्गके जो दोष हैं सुन, हे राजन् ! जो आपतें ऊंचे श्रेष्ठ दृष्टि आते हैं, अरु उत्तमसुख भोगते हैं, तिनको देखिके तापकी उत्पत्ति होती है, क्यों, जो उनकी उत्कृष्टता सही नहीं जाती है, अरु जो कोई अपने समान सुख भोगते हैं तिनको देखिके क्रोध उपजता है, जो मेरे समान क्यों बैठे हैं, अरु जो आपतें नीचे बैठे हैं, कनिष्ठपुण्यवाले, तिनको देखिके आपको अभिमान उपजता है, जो मैं इनतें श्रेष्ट हौं, औ एक औरभी दोषहै, जो जब इसके पुण्य क्षीण होतेहैं तब तिसी कालमें इसको मृत्युलोकमें गिराय देते हैं, एक क्षणभी रहने देते नहीं, हे राजन् ! यह जो दोष कहे सो स्वर्ग में जो तैनें पूछा सो मैंनें गुण अरु दोष कहा।

हे भद्रे ! जब इस प्रकार राजा को मैंने कहा तब मोको राजानें कहा, हे देवदूत ! इस स्वर्गके जोग हम नहीं, अरु हमको इच्छा भी नहीं है, हम उग्रतप करेंगे। तप करके इस देहको भी त्याग देंगे। जैसे सर्प अपनी त्वचाको पुरातन जानिके त्याग करता है

तैसे हम भी त्याग कर देंगे। हे देवदूत! तुम तुमारे विमान को जहांतें लाया है तहां ले जाओ। हमारे तो नमस्कार है।

हे देवि! जब इस प्रकार राजानें मुझको कहा, तब विमान औ अप्सरा आदि सबको लेके स्वर्ग में गया, अरु संपूर्ण वर्तमान इन्द्रको कहा। तब इन्द्र प्रसन्न हुआ अरु सुंदर वानी करके मुझको कहत भया, हे दूत! तूं बहुरि जहां राजा है तहां जा, वह संसार से विरक्त हुआ है, इसको अब आत्मपद की इच्छा हुई है, इसको साथ लेके वाल्मीक के पास जा, सो वाल्मीक कैसा है, जिसनें आत्मतत्व को आत्माकरि जान्या है, तिसके पास ले जाय मेरा संदेश देना, जो हे महाऋषि! इस राजाको तत्वबोध का उपदेश करना, जो यह बोध का अधिकारी है, काहेतें, जो इसको स्वर्ग कीभी इच्छा नहीं, अरु अवर कीभी वांछा नहीं, तातें तुम इसको तत्त्वबोधका उपदेश करो, जो तत्वबोध को पायकरके संसार दुःखतें मुक्त होवै।

हे सुभद्रे! जब इसप्रकार देवराजानें मुझको कहा, तब मैं चला, जहां राजा था वहां जायकरिके मैंने कहा, जो हे राजन्! तूं संसारसमुद्रतें मोक्ष होने के निमित्त वाल्मीक के पास चल, वाल्मीक तुझको उपदेश करैगा, तब तिसको साथ लेकर मैं वाल्मीक

के स्थानपर आय प्राप्त भया, तिस स्थानमें राजाको बैठाया अरु इंद्रका संदेश दिया, जो उहां वृतांत भया सो सुन, जब उहां गये अरु प्रणाम कर बैठे, तब वाल्मीक नें, कहा हे राजन् ! कुशल है ।

राजोवाच—हे भगवन् ! परमतत्त्वज्ञ औ वेदांत जानने वाले में श्रेष्ठ ! मैं अब कृतार्थ हुआ, तुमारे दर्शन करके अब मुझको कुशल हुआ है, अरु कछु पूछता हौं, कृपा करके उत्तर कहना, जो संसार बंधन तें मुक्ति होय ।

वाल्मीक उवाच—हे राजन ! महारामायण की कथा तुझको कहता हौं, सो श्रवण करके तिसका तात्पर्य हृदयविषे धारणे का यत्न कर, जब तात्पर्य हृदयविशे धरैगा, तब जीवन्मुक्त होयकर बिचरैगा, हे राजन् ! वसिष्टजी अरु रामचंद्रजीका संवाद है जिसमें तिसमें सब कथाकोर मोक्षकाहि उपाय कहा है, तिसको सुनि के जैसे रामचन्द्र जी अपने स्वभावविषे स्थित हुए, अरु जीवन्मुक्त होयके बिचरे हैं, तैसे तूंभी बिचरैगा ।

राजोवाच—हे भगवान् ! रामचंदजी कवन था, अरु कैसा था, अरु कैसे होकर बिचर्या है, सो कृपा करके कहो ।

बाल्मीक उवाच—हे राजन् ! शापके वशतें हरि जो बिष्णु, तिसने छल करके मनुष्यका देह धर्या, सो

अद्वैतज्ञानकरि संपन्न है, तौभी कछुक अज्ञानको अंगीकार करके, मनुष्यका शरीर धन्या था।

राजोवाच—हे भगवन्! चिदानन्दरूप जो हरिहै, तिसको शाप किसकारण हुआ, अरु किसने दिया? सो कहो,

वाल्मीक उवाच—हे राजन्! एक काल में सनत्कुमार जो निष्काम हैं सो ब्रह्मपुरी में बैठे थे, अरु त्रिलोकका पति जो विष्णुभगवान्, सो वैकुंठतें उतरिके ब्रह्मपुरीमें आये, तब ब्रह्मासहित सर्व सभा उठके खडी हुई, अरु पूजन किया, परंतु सनत्कुमारनें पूजन किया नहीं तिसको देखकर विष्णुभगवान् बोलत भया, हे सनत्कुमार! तुमको निष्कामताका अभिमान है, तातें तू काम करके आतुर होवैगा, अरु स्वामीकार्तिक तेरा नाम होवैगा, जब विष्णुभगवाननें ऐसा कहा, तब सनत्कुमार बोला, हे विष्णु! सर्वज्ञताका अभिमान तुमको है, सो सर्वज्ञता कोई कालमें निवृत्त होवेगी, अरु अज्ञानी होवैगा, हे राजन्! एक तो यह शाप हुआ, और भी सुन।

एक कालमें भृगुकी स्त्री जात रहीथी, तिसके वियोगकर वह ऋषि तपायमान हुआ था, तिसको देखके विष्णुजी हंसे, तब भृगुब्राह्मणने शाप दिया, हे विष्णु! मेरेको देखी तैंनें हांसी करी है, सो मेरी नाईं तूंभी स्त्रीके वियोगकर आतुर होवैगा।

अरु एक दिवस देवशर्मा ब्राह्मणनें नरसिंह भगवानको शाप दिया था, सो सुनः—एक दिन नरसिंह भगवान् गंगाके तीरपर गये थे, तहां देवशर्मा ब्राह्मण की स्त्री थी, तिसको देखके नरसिंहजी भयानकरूप देखायके हंसे, तिनको देखके ऋषिकी लुगाईनें भय पाय प्राण छोड दीन्हे, तब देवशर्मानें शाप दिया, जो तुमने मेरी स्त्रीका वियोग किया तातें तुमभी स्त्री का वियोग पाओगे।

हे राजन् ! सनत्कुमार, अरु भृगु, अरु देवशर्माके शाप करके विष्णुभगवाननें मनुष्यका शरीर धर्या, सो राजा दशरथके घरमें प्रगटे, हे राजन् ! ए जो शरीर धर्या है, अरु आगे जो वृत्तांत हुआ है, सो सावधान होय श्रवण कर, दिव्य जो है देवलोक, अरु भू जो है पृथ्वीलोक, अरु पाताललोक ऐसी त्रिलोकी को प्रकाशता है, अरु अंतर बाहिर आत्मतत्वकरि पूर्णहै ऐसा अनुभवात्मक जो मेरा आत्मा है, तिस सर्वात्मा को नमस्कार है।

हे राजन्! यह शास्त्र का आरम्भ कियाहै, तिसका विषय क्या है, अरु प्रयोजन क्या है, अरु संबंध क्या है, अरु अधिकारी कौन है सो श्रवण कर सच्चिदानन्दरूप अचिंत्य चिन्मात्र आत्मा को ब्रह्माभिन्न जनावता है, सो विषय है, अरु परमानन्दकी प्राप्ति अरु अनात्म अभिमानजन्य दुःखकी निवृत्ति यह

प्रयोजन इसमें है अरु ब्रह्मविद्या मोक्षउपायकर आत्म पदका प्रतिपादक है, सोसंबंध है, अरु जिसको यह निश्चय है, जो मैं अद्वैतब्रह्म अनात्मदेहसाथ बांध्या हुआ हौं, सो किसी प्रकार छूटौं, सो न अति ज्ञानवान् है, न मूर्ख है, ऐसा जो विज्ञप्ति आत्मा है, सो यहां अधिकारी है,

यह शास्त्र मोक्षका उपाय है सो कैसा है मोक्ष उपाय, परमानन्दकी प्राप्ति करनेहारा है, जो पुरुष इसको विचारै सो ज्ञानवान् होवै, बहुरि जन्ममरणरूप संसारमें न आवै, हे राजन् ! यह महारामायण जो है सो पावन है, श्रवण मात्रतें सब पापका नाश करताहै, जिसविषे रामकथा है, सो प्रथम मैं आपने भारद्वाज शिष्यको श्रवण कराई है।

एक समय भारद्वाज चित्तको एकाग्र करके मेरेपास आया था, तिसको मैं उपदेश किया था, तिसकोश्रवण करके वचनरूपी समुद्र तें साररूपी रत्न निकास करके हृदयविषे धरकें एक समय सुमेरुपर्वत पर गया, तहां पितामह जो ब्रह्मा सो बैठा था, अरु भारद्वाजनें जाय कर प्रणाम किया, अरु पास बैठा, अरु ब्रह्माजी को यह कथा सुनाई, तब ब्रह्मानें प्रसन्न होकर भारद्वाज को कहा, हे पुत्र ! कछु वर मांग, मैं तुझपर प्रसन्न हुआ हौं, हे राजन् ! जब इस प्रकार ब्रह्माजीनें कहा तब परम उदार जिसका आशय है, ऐसा जो भार-

द्वाज सो कहत भया,—हे भूतभविष्यके ईश्वर ! जब तुम प्रसन्न हुए हो, तब यह वर देहु, जो संपूर्ण जीव संसार दुःखतें मुक्त होहीं, अरु परमपदको पावहीं, सो उपाय कहो,

ब्रह्मोवाच—हे पुत्र ! तू अपने गुरु वाल्मीक पास गमन कर, बहुरि जो तिसने आत्मबोध महारामायण अनिंदितशास्त्र का आरम्भ किया है, तिसको सुनकर जीव महामोहजन्य संसार समुद्रतें तरेंगे, कैसा शास्त्र है महा रामायण, जो संसार समुद्र तरनेका पूल है, अरु परम पावन है,

वाल्मीक उवाच—हे राजन् ! जब इस प्रकार कहा, तब आप परमेष्टी ब्रह्मा सो भारद्वाजको साथ लेकर मेरे आश्रममें आये, तब मैंने भले प्रकारसों उनका पूजन किया, सो ब्रह्माजी कैसे हैं, सर्व भूतनके हित में प्रीति है जिनकी, वे मुझको कहत भये ।

ब्रह्मोवाच—हे मुनिओंमें श्रेष्ठ वाल्मीक ! यह जो रामके स्वभाव के कथनका आरंभ तुमने किया है तिस उद्यमका त्याग नहीं करना, इसको आदितें अंतपर्यंत समाप्त करना, कैसा है यह मोक्षउपाय, जो संसाररूपी समुद्रके पार करने को जहाज है; इसकर सब जीव कृतार्थ होवेंगे ।

वाल्मीक उवाच—हे राजन ! इसप्रकार ब्रह्माजी मुझको कहिके अंतरधान हो गये, जैसे समुद्रतें आव-

तैसेक एक मुहूर्तपर्यंत उठके दहरि लीन हो जावै ऐसे ब्रह्माजी अंतर्धान हो गये, तब मैंने भरद्वाजको कहा, हे पुत्र ! ब्रह्माजीनें क्या कहा।

भारद्वाज उवाच—हे भगवन् तुमको ब्रह्माजीनें ऐसा कहा, जो हे मुनिश्रेष्ट, यह जो तुमनें रामके स्वभाव के कथनका उद्यम किया है, तिसका त्याग नहीं करना, अंतपर्यंत प्रयास करना, काहेतें, जो इस संसार समुद्र के पार करनेको यह कथा जहाज है, इसकर अनेक जीव कृतार्थ होवेंगे; अरु संसार संकट तें मुक्त होवेंगे,

वाल्मीक उवाच—हे राजन् ! जब इस प्रकार ब्रह्माजी नें मुझको कहा, तब ब्रह्माजी की आज्ञा के अनुसार मैंने ग्रंथ किया, अरु भारद्वाजको कहा, हे पुत्र! वसिष्ठजी के उपदेशको पायकर जिस प्रकार रामजी निःशंक होइ विचरे हैं, तैसे तूंभी विचर, तब उसनें प्रश्न किया।

भारद्वाज उवाच—हे भगवन् ! जिसप्रकार रामचन्द्र जी जीवन्मुक्त होकर विचरे हैं सो आदिसौं क्रम कर के मुझको कहो।

वाल्मीक उवाच—हे भारद्वाज ! रामचन्द्र, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, सीता, कौसल्या, सुमित्रा, दशरथ, अष्ट तौ यह जीवन्मुक्त हुए हैं ; अरु अष्ट मंत्री, अष्ट गुण अरु वशिष्ठ, वामदेवतें आदि अष्टविंशति जीवन्मुक्त होय विचरे हैं , तिनके नाम सुन; रामजीतें लेकर दश;

रथपर्यंत आठ तौ ये कृतार्थ हुए हैं; अविरोध परबोधवान् भये हैं, औ कुंभासी १ शतवर्धन, २ सुखधाम, ३ विभीषण, ४ इंद्रजित, ५ हनूमान, ६ वसिष्ठ, ७ वामदेव, ८ ए अष्ट मंत्री सो निःशंक होय चेष्टा करत भये हैं, अरु सदा अद्वैतनिष्ठ हुए हैं, इनको कदाचित् स्वरूपतें द्वैतभाव नहीं स्फुर्या है अनामयपदविषे स्थिति में तृप्त रहे हैं, जो केवल चिन्मात्र, शुद्धपद परमपावन, ताको प्राप्त हुए हैं।

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे कथारंभवर्णनं प्रथमः सर्गः १

द्वितीय सर्गः २

अथ तीर्थयात्रावर्णनं ।

भारद्वाज उवाच—हे भगवन् ! जीवन्मुक्तकी स्थिति कैसी है, अरु रामजी कैसे जीवन्मुक्त हुए हैं, सो आदितें लेकर अंतपर्यंत सब कहौ।

बाल्मीक उवाच....हे पुत्र ! यह जगत जो भासता है, सो वास्तविक कछु नाहिं उत्पन्न भया, अविचार करके भासता है, विचार कियेतें निवृत्त हो जाता है, जैसे आकाशमें नीलता भासती है सो भ्रम करके है, जब विचार करके देखिये तब नीलताप्रतीति दूर हो

जाती है, तैसे अविचार करके जगत भासता है, अरु विचारतें लीन हो जाता है. हे शिष्य, जबलग सृष्टि का अत्यंत अभाव नहीं होता, तबलग परमपद की प्राप्ति नहीं होती, जब दृश्यका अत्यंत अभाव होय जावै, तब पाछे शुद्ध चिदाकाश आत्मसत्ता भासैगी, कोई इस दृश्य को महाप्रलय में कदाचित अभाव कहते हैं परन्तु मैं तुझको तीनोंही कालका अभाव कहता हौं, सो सशास्त्र होनेतें इस शास्त्र में श्रद्धासंयुक्त आदितें लेकर अंततक श्रवण करै, अरु तिनको धारण करै, तब भ्रांति निवृत्त होय जावै, अरु अध्यात्मपदकी प्राप्ति होवै, हे शिष्य ! संसार भ्रममात्र सिद्ध है, इसको भ्रममात्र जानकर विस्मरण करना, यही मुक्ति है, अरु इसको बंधनका कारण वासना है, वासना करके भटकता फिरता है, जब वासना का क्षय होयजाय, तब परमपदकी प्राप्ति होवै, एक वासना का पुतला है, तिसका नाम मन है, जैसे जल सरदी की दृढजडता पाय के बरफ होता है, पाछे सूर्य के तापतें बहुरि पिगलकर जल होता है, तब केवल शुद्ध जल होय रहता है, तैसे आत्मरूपी जल है, तिसविषे संसारकी सत्यतारूपी जड़ता शीतलता है, तिसकरके मनरूपी बरफका पुतला हुआ है, जब ज्ञानरूपी सूर्य उदय होवैगा, तब संसारकी सत्यतारूपी जड़ता अरु शीतलता निवृत्त होय जावैगी ।

जब संसार की सत्यता अरु वासना निवृत्त हुई, तब मन नष्ट होय जावैगा, जब मन नष्ट हुआ, तब परम कल्याण हुआ, तातें इसको बंधका कारण वासना है, अरु वासना के क्षय हुएतें मुक्ति है, सो वासना दो प्रकारकी है, एक शुद्ध अरु दूसरी अशुद्ध यहजो अपने वास्तविक स्वरूपके अज्ञानतें अनात्मा जो देहादिक, तिनमें अहंकार करना, जब इसको अनात्म में आत्मा अभिमान हुआ, तब नानाप्रकारकी वासना उपजती है, तिसकरके घटीयंत्रकी नांई पड्या भ्रमता है, हे साधु। यह जो पंचभूतका शरीर तूं देखता है सोसब वासनारूप है, वासना करके खडा है, जैसे मणके धागे के आश्रयतें खडे होते हैं, जब धागा टुट पर्या, तब मणका न्यारा न्यारा होय पडता है, अरु ठहरता नहीं है,तैसे वासनाके क्षय हुए पंचभूतका शरीर नहीं रहता, तातें सब अनर्थका कारण वासना है, अरु जो शुद्ध बासना है, तिसमें जगतका अत्यंत अभाव निश्चय होता है, हे शिष्य! अज्ञानीका जो निश्चय है, सो वासनाकर बहुरि जन्म का कारण हो जाता है, अरु ज्ञानीकी वासना सो बहुरि जन्म कारण नहीं होती, जैसे एक कच्चा बीज होता है, दूसरा दग्ध बीज होता है, तिस में जो कच्चा है सो बहुरि उगता है, अरु जो दग्ध हुआ है सो बहुरि नहीं उगता, तैसे अज्ञानी की वासना रससहित है,

सो जन्म का कारण है, अरु ज्ञानी की वासना रस-रहित है, सो जन्मका कारण नहीं, ज्ञानीकी चेष्टा स्वाभाविक गुण-करके पड़ी होती है, उह किसी गुण साथ मिलकर अपनेमें चेष्टा नहीं देखता; खाता है, पीता है, लेता है, देता है, बोलता है चलता है, व्यवहार करता है; अरु अंतर सदा अद्वैत निश्चय को धरता है, कदाचित् द्वैतभावना तिसको स्फुरती नहीं है, अपने स्वभावविषे स्थित है, तातें निर्गुण अरु अरूप है, ताकी चेष्टाभी जन्मका कारण नहीं है, जैसे कुंभारका चक्र है, सो जबलग उसको फेर चढावें, तबलग वह फिरता है, औ जब फेर चढावना छोड़ दिया; तब स्थीयमानगतिसें उतरत उतरत फिरके स्थिर रहि जाता है, तैसे जबलग अहंकार सहित वासना होती है, तबलग जन्म पावता है, जब अहंकारतेंरहित हुआ तब बहुरि जन्म नहीं पावता, हे साधु ! यह जो अज्ञानरूपी वासना है, तिसको नाश करने का उपाय एक ब्रह्म विद्या श्रेष्ट है, जो ब्रह्मविद्या मोक्ष उपाय शास्त्र है, जब इसतें और शास्त्ररूपी गर्त्त में गिरैगा तब कल्पपर्यंत अकृत्रिमपदको न पावैगा, अरु जो ब्रह्मविद्या का आश्रय करैगा सो सुखसों आत्मपद को प्राप्त होवैगा, हे भारद्वाज ! यह मोक्षउपाय रामजी अरु वसिष्ठजीका संवाद है, सो विचारने योग्य है,

बोधका परम कारण है, तातें आदिते लेकर अन्त पर्यंत मोक्ष उपाय श्रवण कर, जैसे रामजी जीवन्मुक्त बिचरे हैं सो सुन।

एक दिन रामजी विद्या पढके अध्ययनशालातें अपने गृह में आये, अरु संपूर्ण दिन बिचार सहित व्यतीत करत भये, बहुरि मनमें तीर्थ ठाकुरद्वारका संकल्प धरकर पिता दशरथ के पास आये; पिताके साथ जो सम्पूर्ण प्रजाको सुख में रखता था, अरु सब प्रजा तिसके निकट रहिके सुख पाई, तिस दशरथ का चरण श्री रघुनाथ जी नें ग्रहण किया, जैसे सुन्दर कमलको हंस ग्रहण करै, जैसे कमल-फूलके तले कोमल तरैयां होती हैं, तिन तरैयांसहित कमलको हंसपकड़ता है,तैसे दशरथजीकी अंगुरीनको रामजीनें ग्रहण किया, अरु बोले, जो हे पिता! मेरा चित्त तीर्थ अरु ठाकुरद्वार के दर्शनको उठा है, तातेंतुम आज्ञा करौतो मैं तीर्थ का अरु ठाकुरद्वारका दर्शन कर आऊं, मैं तुमारा पुत्र हौं, तुमारे पालना करनी योग्य है, औ आगे मैं कभी कहा नहीं, यह प्रार्थना अबकरी है, तातें तुम आज्ञा देहु, जो मैं जाऊं, यह बचन मेरा फेरना नहीं, काहेतें जो ऐसा त्रिलोकी में कोउ नहीं है, जिसका मनोरथ इस घरतें सिद्ध हुआ नहीं है, सबका मनोरथ सिद्ध हुआ है, तातें मुझको कृपा कर आज्ञादेहु,

वाल्मीक उवाच—हे भारद्वाज ! इसप्रकार जब रामजीनें कहा, तब वसिष्ठजी पास बैठे थे, तिनमेंभी दशरथको कहा, हे राजन् ! रामजी को आज्ञा देहुः सो तीर्थ कर आवें, जो इनका चित्त उठ्या है, ये राजकुमार हैं, इनके साथ सेना दीजैं, धन दीजे, मंत्री दीजें ब्राह्मण दीजैं जो यह दर्शन कर आवैं।

हे भारद्वाज ! जब ऐसे विचार किया, तब शुभ मुहूर्त देखकर रामजीको आज्ञा दीनी, जब चलने लगे तब पिताअरु माताके चरण लगे, अरु सबकोकंठ लगाई रुदन करने लगे, तिनको मिलकर आगे चले, कैसेचले जो लक्ष्मण आदि जो भाई हैं, औ मंत्री थे, तिनको साथ लेकर, अरु वासिष्ट आदिजो ब्राह्मण विधिको जान नेवाले थे, अरु बहुत धन, सेना तिनको साथ ले चले, औ दानपुन्य करते जब गृह के बाहिर निकसे, तब उहांके जो लोकथे, अरु स्त्रियां थी तिन सबने रामजीके ऊपर फूल अरु कली की मालकी वर्षा करी, सोकैसी वर्षा है, जैसे बरफकी वर्षत है अरु रामजीकी जो मूर्ति हैसोहृदय में धर लीनी, इसी प्रकार रामजी उहांसों चले, तहां ब्राह्मण अरु निर्धन को दान देते देते तीर्थ जो गंगा, यमुना, सरस्वती आदि लेके हैं, तिनमें विधि संयुक्त स्नान कर पृथ्वीके चारों कौन उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिमको दान किया, अरु चारों ओर समुन्द्रमें स्नान किये, अरु सुमेर पर्वतपर गये, हिमालय पर्वतपर गये,

संपूर्ण गंगा आदि के स्नान किये, अरु शालिग्राम बद्रिकेदार आदिमें स्नान किये, अरु दर्शन किये, ऐसे सब तीर्थस्नान, दान तप, ध्यान विधिसंयुक्त यात्रा करत भये, जैसी जहां विधि थी तैसी तैसी तहांकरी, एक वर्ष में संपूर्ण यात्रा करके रामजी बहुरि अपने नगर में आये।

इति श्रीयो० वै० तीर्थयात्राव० नाम द्वितीयःसर्गः२ ;

तृतीयः सर्गः ३

अथ विश्वामित्रागमन वर्णनं.

वाल्मीक उवाच—हे भारद्वाज! जब रामजी यात्रा करके अपनी अयोध्यामें आवत भये, तब नगरके वासी लोक पुरुष और स्त्री फूलकी औ कलीकी वर्षा करत भये, अरु जयजय शब्द मुखतें उच्चारन लगे अरु बडे उत्साहको प्राप्त भये, औ जैसे इंद्रका पुत्र अपने स्वर्ग में आवत है, तैसे रामचंद्रजी अपने घरमें आये, पहिले राजा दशरथको प्रणाम कर, फिर वसिष्ठजी को प्रणाम कर सब सभाके लोकनसें योग्य मिलके, फिर अंतःपुरमें आवत भये, तहां कौसल्या आदि जो माता थीं तिनको यथा,योग्य नमस्कार किये,औ जो भाई बांधव कुटुंब था तिन सबनको मिले।

हे भारद्वाज! इसप्रकार रामजीके आवनेका उत्साह,

दस दिनपर्यंत होत रहा, ता समयमें कोउ मिलने आवै, कोउ कछु लेने आवै, तिनको दानपुण्य करत, बाजे बाजत बहुत उत्साह हुआ, भाट आदि स्तुति करने लगे, तदनंतर रामजीका आचरण हुआ सो सुन. प्रातःकालमें उठके स्नानसंध्यादिक सत्कर्म करते, बहुरि भोजन करहीं, बहुरि भाईबंधुको मिल अपने तीर्थ की कथा करते, देव, द्वारके दर्शनकी वार्ता करते, इस प्रकार सों उत्साह कर दिनरात को वीतावते थे।

एक दिन प्रातःकालमें उठके पिताजी दशरथको देखे, सो जैसे चंद्रका तेज है तैसा तेजवान् देख्या, अरु वसिष्ठादिक की सभा बैठी थी तहां वसिष्ठजीके साथ कथा, वार्ता रामजी करहीं, तहां एक दिन राजा दशरथ कहत भया, हे रामजी! तुम शिकार खेलने जैया करौ, ता समय में रामजी की अवस्था वर्ष १६ में थोरेक महिना कमती थी ऐसा राजकुमार था, अरु लक्ष्मण शत्रुघ्न भाई तव साथ थे, भरत नहान को गया था, तिनहुसाथ चरचा हुलास करहीं, फिर तिनके साथ स्नानसंध्यादिक नित्य कर्म करके भोजन करके शिकार खेलने जाते, तहां जो लोकको दुःख देने हारे जानवर देखें तिनको मारने, अरुअवरलोक प्रसन्नकरते. इसप्रकार दिनको शिकार खेलतजातरात्रि कोबाजते निशानअपने घरमें आवते, ऐसे करत केतेक दिन बीते; तब रामजी बाहिरतें अपने अंतःपुरमें आय शोकसहित स्थित भये, हे भारद्वाज ! जेती कछु

राजकुमार की चेष्टा थी सो सबको त्याग करके एकांतविषे चितासहित बैठी रहते ।

जेते कछु रससंयुक्त इंद्रियोंके विषयहैं तिनको त्यागके शरीरतें दुर्बल जैसे होत मुखकी कांति घट गई,पीतवर्ण हो गये, जैसे कमल सूकके पीतवर्ण हो जाता है, तैसे रामजी का मुख पीरा हो गया, अरु सूके कमलपर भँवरे बैठते हैं तैसे सूके मुखकमलपर नेत्ररूपी भँवरे भासन लगे, सोहु शोभा होन लगी,अरु इच्छा निवृत होगई, जैसे शरत्कालमें ताल निर्मल होता है,तैसे इच्छारूपी मलनतें रहित चित्तरूपी तालहु निर्मल होता है, अरु दिनदिनपै शरीर निर्मल होत जावै अरु जहां बैठत हां चितासंयुक्त बैठे रहि जावै, उठै नहीं, अरु बैठे तब हाथपै चिबुक धरके बैठे, जब टहलुए मंत्री बहुत कहहीं जो हे प्रभो! यह स्नानसंध्याका समय हुआ है सो अब उठो, तब उठकर स्नानादिक करहीं, अरु हृदयमें न विचारहीं, जेती कछु खाने, पीने, बोलने, चलने, पहिरने की क्रिया है सो सब विरस होय गई है, ऐसे रामचंद्रजी भये, तब लछमण अरु शत्रुघ्न रामजीको संशययुक्त देखके तिस प्रकार हो बैठे ।

तब दशरथ यह वार्ता सुनके रामजी पास आय बैठे, अरु देखे तब महाकृश जैसा होय गया है इस चिताकरके आतुर हुआ, जो हाय हाय, इसकी क्या अवस्था हुई है, इस शोकके लिये रामजीको गोदमें बैठाय अरु

पूछने लगा, कोमल सुंदर शब्द करके बोले, जो हे पुत्र! तुमको क्या दुःख प्राप्त भया है! जिसकर तुम शोकवान् हुए हो। तब रामजी नें कहा, जो हे पिता! हमको तौ दुःख कोउ नहीं है, ऐसे कहिके चुप हो रहा, जब केतेक दिवस इसप्रकार व्यतीत भये, तब राजाभी शोकवान् हुआ, अरु सब स्त्रियांभी शोकवान् भई, अरु राजा, मंत्री। मिलके विचार करने लगे, जो पुत्रका किसी ठौर विवाह करना, अरु यहभी विचार किया, जो क्या हुआ है; जो मेरा पुत्र शोकवान् होय रहता है, तब वसिष्ठजीको पूछा जो हे मुनीश्वर! मेरा पुत्र शोकमें क्यों रहता है?

तब वसिष्ठजीनें कहा, हे राजन! महापुरुषको जो क्रोध होता है, सो किसी अल्प कारणकर नहीं होता, अरु मोहभी अल्प कारणकर नहीं होता, अरु शोकभी अल्प कारणकर नहीं होता, जैसे पृथ्वी, जल, तेज, वायू, आकाश जो महाभूत हैं सो अल्प कार्यमें विकारवान नहीं होते, जब जगतकी उत्पत्ति प्रलय होती है तब विकारवान् होते हैं, तैसे महापुरुष अल्पकार्य में विकारवान् नहीं होते, तातें हे राजन! तुम शोक करने योग्य नहीं, अरु रामजी शोकवान् हुआ है, सोभी किसी अर्थके निमित्त हुआ होवैगा, पीछे इसको सुख मिलैगा, तुम शोक मत करो।

वाल्मीक उवाच—हे भारद्वाज । ऐसे वसिष्ठजी अरु राजा दशरथ विचार करते थे, तिस कालमें विश्वामित्र अपने यज्ञके अर्थ आवत भये, राजा दशरथके ग्रहमें आयकर जेष्ठीको कहत भये, जो राजा दशरथको कहो गाधीका पुत्र विश्वामित्र बाहिर खडाहै तब इसनें औरहुंको जाय कहा, हे स्वामी ! एक बड़ा तपस्वी द्वारपे आय खड़ा है, तिसनें हमको कहा जो राजा दशरथके पास जाय कहो, जो विश्वामित्र आये हैं, सो सुनकर राजा दशरथके पास गये, अरु कहा जो विश्वामित्र गाधीका पुत्र वाहिर खड़ा है, सो संपूर्ण मंडलेश्वरकर पूज्य जो राजा दशरथ सवनसहित अपने सिंहासन पर बैठा है, अरु बड़े तेजकर संपन्न है, बडे बडे ऋषि, मुनि, साधु, प्रधान औ मित्रादिकनकरि वेष्टित है, ऐसे राजा अपनी सभामें विराजे हैं।

हे भारद्वाज ! तिस राजाकूं जब इस प्रकार जेष्ठीनें कहा तब राजा जो मंडलेश्वरकर आच्छादित व्हैके बैठा था, अरु बडा तेजवान् था, सो सुनकर सुवर्णके सिंहासनतें उठ खडा हुआ, अरु चरणों करके चल्या, राजाकी एक ओर वसिष्ठजी, औ दूसरी ओर वामदेवजी, अरु सुभटकी नाई मंडलेश्वर स्तुति करत चले, तब जहांतें विश्वामित्र दृष्टि आये तहांतें प्रणाम करने लगे, जहां पृथ्वी पर शीस राजाका लगै तहां पृथ्वीभी मोती की सुंदर होय जावे, इसप्रकार शीस

नमावत नमावत राजा विश्वामित्र के आगे चल्या; सो विश्वामित्र कैसा है, जो वडी जटा शिरपरतें कांधतक परी हुई अग्नि की नाईं प्रकाशित है, अरु शरीर सुवर्ण की नांई प्रकाशता है, अरु हृदयमें शांति, कोमल स्वभाव जानवे में आवें ऐसे अरु महा तेजवान् सुन्दर कांति, अरु शांतिरूप, अरु हाथ में वांसकी तंद्री,अरु महाधैर्यवान् ऐसे विश्वामित्रको प्रणाम करता राजादशरथचरणउपर जाय गिरा, जैसेसूर्यसदा शिवके चरणपर जाय गिरे तैसे मस्तक नवायकरकहा मेरे वडे भाग्य हुए जो तुम्हारा दर्शन हुआ है, हमारे ऊपर तुम वडा अनुग्रह किया है, हमको वडा आनंद प्राप्त हुआ है, जो अनादि अनंत है, आदि, मध्य, अंततें रहित अविनाशी है, ऐसा जो अकृत्रिम आनंद है सो तुम्हारे दर्शन कर मुझको प्राप्त हुआ दृष्टिमें आवता है, हे भगवन्! आज मेरे बडे भाग्य हुए हैं, जो मैं धर्मात्माके गिननेमें आउंगा; काहेतें, जो तुम मेरे कुशलनिमित्त आये हो, हे भगवन! तुमारा आवना हमारे लक्ष में नहीं था, अरु तुमनें वडा अनुग्रह किया है, जैसे सूर्य कोई कार्य करने को पृथ्वीउपर आवे तैसे तुम मुझको दृष्टीमें आते हो, अरु सबतें उत्कृष्ट दृष्टीमें आते हो, काहेतें जो तुममें दो गुण हैं, एक तो क्षत्रियका स्वभाव तुमारे में है, अरु दूसरा ब्राह्मणका स्वभाव भी तुम्हारे में

भासता है, अरु शुभ गुणकर संपूर्ण हो,हे मुनीश्वर! तुम क्षत्रियमें तें ब्राह्मण भये हो,ऐसा कोई का सामर्थ नहीं देखा, अरु तुमारा शरीर प्रकाशकर दीखता है, अरु जिस मार्ग तुम आये हो, अरु जिस मार्ग तुम दृष्टि करत आये हो, तहांतें अमृतवृष्टि करत आये हो, ऐसा दृष्टि आता है, हे मुनीश्वर ! तुम आए सो तुमारे दर्शनकर मुझको बडा लाभ हुआ है ।

हे भारद्वाज ! इस प्रकार राजा दशरथ विश्वामित्र को बोला अरु वसिष्ठजी आयकर विश्वामित्र को कंठ लगायके मिले, और जो मंडलेश्वर राजा थे तिनों में बहुत प्रणाम करे, इस प्रकार सब मिले, तब बिश्वामित्र को राजा दशरथ घरमें ले आया, जहां राज सिंहासन था तहांआनकर बैठाया, अरु वसिष्ठ वामदेवको बैठाये, औ राजा दशरथनें विश्वामित्र का पूजन किया, अरु अर्घ्य पादार्चन करके प्रदक्षिणा करी, बहुरि वसिष्ठजीनें विश्वामित्र का पूजन किया अरु विश्वामित्र नें वसिष्ठजीका पूजन किया, ऐसे अन्नोन्य पूजन हुआ, इस प्रकार पूजन करके सब अपने अपने आसन पर यथायोग्य बैठे ।

तब राजा दशरथ बोले, हे भगवन् ! हमारे बडेभाग्य हैं जो तुम्हारा दर्शन हुआ, जैसे कोउ तप्त को अमृत प्राप्ति होवै अरु जन्मांधको नेत्रप्राप्ति होवै, सो आनन्द पावै, जैसे निर्धन को चिंतामणि प्राप्त होवै,

अरु आनंद को पावै, अरु जैसे किसीका बांधव मुवा होवै, सो विमानपर चढ्या हुआ आकाशतें आवै, उसको जैसा आनन्द प्राप्त होवै, तैसे तुमारे दर्शनकर मैं आनन्दको प्राप्त हुआ हौं, हे मुनीश्वर! तुमारा आवना जिस अर्थ हुआ है, सो कृपा कर कहौ अरु जो तुम्हारा अर्थ है सो पूर्ण जानौ, काहेतें जो ऐसा पदार्थ कोउ नहीं जो तुमको देना कठिण है, सब कछु मेरे विद्यमान है, जो तुमारा अर्थ है, सो निश्चय कर जानने योग्य होय रहा है, जो कछु तुम आज्ञा करौगे सो मैं देउंगा ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे विश्वामित्र गमन वर्णन नाम तृतीयः सर्गः ३.

चतुर्थः सर्गः ४

अथ विश्वामित्रेच्छा वर्णनं.

वाल्मीक उवाच—हे भारद्वाज ! जब इस प्रकार राजा दशरथनें कहा तब मुनिमें शार्दूल जो विश्वामित्र सो बहुत प्रसन्न भये, अरु रोम खडे हो आये, जैसे पूर्णमासी के चन्द्रमा को देखके क्षीरसागर प्रसंन होता है, तैसे प्रसन्न होकर कहत भये, हे राजशार्दूल! तुम धन्य हो ! ऐसा क्यों न होवै, जो तुमारे में दो गुण श्रेष्ठ हैं, एक तो रघुवंशी हो, दूसरा वसिष्ठजी

तुमारा गुरु है, ताकी आज्ञामें चलते हौ तातें,

हे राजन् ! जो कछु मेरा प्रयोजन है, सो तुमारे विद्यमान प्रगट करता हौं, श्रवण करौ, दशरात्र यज्ञ का मैंने आरम्भ किया है, सो जब यज्ञको करने लगता हौं, तब राक्षस खर अरु दूषण सो आय विध्वंस करते हैं, जहां जहां मैं जायकर यज्ञ करता हौं, तहां तहां आयकर विध्वंस कर जाते हैं, अर्थ यह जो अपवित्र कर जाते हैं, जो रुधिर अरु मांस अरु अस्थि सो डार जाते हैं, सो स्थान यज्ञ करने योग्य नहीं रहता, औ बहुरि मैं और ठौर करने लगता हौं, तहांभी उसी प्रकार अपवित्र कर जाते हैं, तिसके नाश करनेके निमित्त मैं तुमारे पास आया हौं, कदाचित् ऐसे कहौगे जो तुमभी समर्थ हौ तौ हे राजन् ! मैं यज्ञ का आरम्भ किया है, तिसका अंग क्षमा है, जो उसको मैं शाप देऊं, तो वह भस्म हो जावै, परंतु शाप क्रोध विना होत नहीं, अरु जो क्रोध किये तें यज्ञ निष्फल होजाता है, अरु जो मैं चुप कर रहौं हौं तौ वह राक्षस अपवित्र वस्तु डार जाते हैं, तातें मैं तुमारी शरण आया हौं, मेरा कार्य करौ, हे राजन् ! तेरा जो रामजी पुत्र है, सो कमल नयन काकपक्षसंयुक्त है, अर्थ यह जो बालक दूसरी शिखासहित रहै है, तिसको मेरे साथ देहु जो राक्षसकोमारै, तब मेरा यज्ञ सफल होय, औ तुमारे ऐसा शोककरना

नहीं जो मेरा पुत्र बालक है, यह तौ बडे इन्द्र के समान शूर वीर है, इसके समीप वह राक्षस ठहर न शकेंगे, जैसे सिंहके सन्मुख मृगका बच्चा नहीं ठहर शकता,तैसे तेरे पुत्रके सन्मुख राक्षस न ठहरी शकेंगे तातें मेरे साथ इनको तुम देहु, जो तुमारा भी धर्म रहैगा अरु यशभी रहै, मेरा कार्य होवै, इसमें सन्देह नहीं करना।

हे राजन् ! ऐसा पदार्थ त्रिलोकीमें कोउ नहीं जो रामजीका किया कछु न होवे, इसीतें मैं तेरे पुत्रको ले जाता हौं, यह मेरे करसों ढांप्या रहैगा, अरु इस को कोई विघ्न मैं होने न देऊंगा, अरु जो पुत्र वस्तु है, सो मैं जानता हौं, और वसिष्ठजीहु जानते हैं औ जो ज्ञानवान त्रिकालदर्शी होवैगा, सोभी इसको जानत होवैगा, और कोईकी समर्थता नहीं है जो इसको जान शके, तातें तुम इसको मेरेसाथ देहु, जो मेरे कार्यकी सिद्धि होवै।

हे राजन् ! जो समयकर कार्य होता है, थोरेकरभी बहुत सिद्धि पावता है, जैसे द्वितियाके चंद्रमाको दे खके एक तंतु का दान किया होवै, सोभी बहुत है, पीछे वस्त्रका दान कियेतेंभी तैसा कार्य सिद्ध नहीं होता। तैसे समयकर थोड़ा कार्यभी बहुत सिद्धिको देता है, अरु समयबिना बहुत कार्य भी थोरे फलको देता है, तातें तुम मेरेसाथ अब रामजीको दीजे, खर,

दूषण ए बड़े दैत्य हैं, सो आयकर मेरा यज्ञ खंडन करते हैं, जब रामजी आवेंगे, रामजी के आगे खडे होय न शकेंगे, इसके तेजकर उह सब अल्प हो जावैंगे जैसे सूर्यके तेजकरके तारागण का प्रकाश छिप जाता है, तैसे रामजीके दर्शनकर वह स्थित न रहैंगे, जैसे गरुड के आगे सर्प नहीं ठहर शके,तैसे रामजीके आगे राक्षस न ठहर शकेंगे, देखकर भाग जावैंगे, तातें तुम मेरेसाथ देहु, जो मेरा कार्य होवै, अरु तुमारा धर्म भी रहै, रामजी के निमित्त संदेह मत करना,वह राक्षसकी समर्थता नहीं जो रामजीके निकट आवै, अरु मैंभी रामजीकी रक्षा करौंगा ॥

बाल्मीक उवाच—हे भारद्वाज! जब विश्वामित्र नें ऐसे कहा तब राजा दशरथ सुनकर तूष्णीं रहा, अरु गिर पड़ा, एक मुहूर्तपर्यंत पडा रहा ।

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे दशरथविषादवर्णनं नाम चतुर्थः सर्गः ४.

पंचमः सर्गः ५

अथ दशरथोक्तिवर्णनं.

वाल्मीक उवाच—हे भारद्वाज ! एक मुहूर्त पाछे राजा उठे अरु महादीन जैसे हो गये, अरु महामोहको प्राप्त होय गये, धैर्यतें रहित होकर बोले ।

राजोवाच—हे मुनीश्वर। तुमने क्या कहा। रामजी अब तौ कुमार है; शस्त्रविद्या अस्त्रविद्याभी शीख्या नहीं है, अब तौ फूलकी शय्यापर शयन करनेवाला है,यह युद्धको क्या जानै?अंतःपुरमें स्त्रियनके पास बैठनेवालाहै,राजकुमार बालककेसाथखेलनेवाला है, औ कदाचित् रणभूमि देखीहु नहीं है, भ्रकुटीको चढायके कदाचित् युद्धभी नहीं किया, अरु कमलकी नांई जिसके हाथ है, अरु कोमल जिसका शरीर है,वह राक्षसके साथ युद्ध कैसे करैगा? कहूं पत्थर का अरु कमलकाभी युद्ध हुआ है?रामजीका वपु कमलसमान कोमल है, अरु वह महाक्रूर पत्थरकी नांई हैं; उनके साथ युद्ध कैसे होवैगा।

हे मुनीश्वर। मैं नवसहस्त्रवर्ष का हुआ हौं, अब दशमा सहस्र लगा है, वृद्ध हुआ हौं,यह वृद्धावस्था में मेरे घर पुत्र हुवे हैं, सो चारोंके मध्य रामजी कमलनयन, अब षोडश वर्षका हुआ है, अरु मुझको बहुत प्रियतम है; अरु मेरा प्राण है,अरु रामजीबिन मैं एक क्षणभी रही नहीं शकता,जो तुम इसको लेजाओगे,तौ मेरा प्राण निकस जावैगो,मैं मृतक हो जाऊंगा।

हे मुनीश्वर! केवल मेराही ऐसा स्नेह नहीं है,किंतु इसके भाई जो लक्ष्मण,भरत,शत्रुघ्न अरु उसकीमाता जोहैं,तिन सबहींके प्राण रामजी हैं,जो तुम रामजीको ले जाओगे तौ हम सबही मर जावैंगे,वियोगकरकेजो

हमको मारने आये हो तो ले जाओ हे मुनीश्वर, मेरे चित्तमें रामही पूर रहा है, तिसको मैं तुमारेसाथ कैसे देऊं ! मैं इसको देखत देखत प्रसन्न होता हों, जैसे पूर्णमासी के चन्द्रमाको देखकर क्षीरसमुद्र प्रसन्न होता है,अरु चन्द्रमाको देखकर चकोर प्रसन्न होताहै, अरु मेघबुंदको देखकर पपैया प्रसन्न होता है, तैसे रामजीको देखकर मैं प्रसन्न होता हों, तब रामजी के वियोगकर मेरा जीवना कैसा होवैगा । हे मुनीश्वर ! मेरे को रामजी जैसी प्रिय स्त्री भी नहीं, अरु धनभी ऐसा प्रिय नहीं, अरु राज्यभी ऐसा प्रिय नहीं, अवर पदार्थभी मुझको कोई रामके समान नहीं है, ऐसा रामजी प्यारा है ।

हे मुनीश्वर । तुमारे बचन सुनिके बड़ा शोकको प्राप्त हुआ हों, मेरे बड़े अभाग्य आये हैं जो तुमारा आवना इसनिमित्त हुआ है,तुमारे बचन सुनकरजैसे कमल ऊपर बरफकी बर्षा होवे, ऐसी व्यथा मेरे को होत है, अरु बरफकी वर्षातें जैसे कमल नष्ट हो जातेहैं,तैसे तुमारे बचनतेंमेरी नष्टता होजावैगी.जैसे बडा मेघ चढ आवै,तामें बडापवन चलै,तब मेघकी गंभीरताका अभाव होय जावै,तैसे तुमारे बचनतें मेरी बडी प्रसन्नताका अभाव होय जाता है,जैसे बसंतऋतु की मंजरी ज्येष्ठ आषाढमें सूक जातीहै,तैसे तुमारेबचन

सुनि मेरे हृदयकी प्रसन्नता जर जाती है। हे मुनी-श्वर। रामजी को देने में समर्थ नहीं हौं, जो तुम कहौ तौ एक अक्षौहिणी सेना मेरी है, सो बड़े शूर वीरकी है, जिसको शस्त्रविद्या, मंत्रविद्या, सब आती हैं, और सबै युद्धमें चतुरहैं, तिनकेसाथ मैं तुमारे संग चलताहौं जायकर मैं उनको मारौंगा, अरु हस्ती, घोडा, रथ, प्यादे ऐसी चतुरंगिणी सेनाको साथ ले जाओ, अरु जो तिहारे यज्ञके खंडनहारेहैं तिनका नाश करौ, अरु एक साथ मैं युद्ध नहीं कर शकौंगा, जो कदाचित यज्ञ खं-डनहारा कुबेरका भाई, अरु विश्रवसका पुत्र रावण होवै तौ उस साथ युद्ध करनेकूं मैं समर्थ नहीं।

हे मुनीश्वर। आगे मेरेमें बड़ा पराक्रम था, वैसा त्रिलोकमें कोउको नहीं था, जो मेरे निकट मारनेको आवै, तौ मैं वाको मार देता, अब मेरी वृद्धवस्था हुई है, अरु देह जर्जरीभावको प्राप्त हुआ है, इस कारण रावणसाथ युद्ध करनेको मैं समर्थ नहीं।

हे मुनीश्वर! मेरे बड़े अभाग्य हैं, जो तुमारा आवना इसनिमित्त हुआ है, अब मेरा वैसा पराक्रम नहीं, मैं रावणसौं कंपता हौं, केवल मैं नही कंपता, इंद्रादिक देवता सब रावणतें कंपतेहैं, अरु सब राक्षस उसकेवश वर्तते हैं, अब किसकी शक्ति है जो रावणके साथ युद्ध करै। इस कालमें वह बड़ा शूरवीर है।

हे मुनीश्वर। जब मेरी समर्थताभी नहीं रहीतौ राज

कुमार रामजी कैसे समर्थ होवैंगे।अरु जिस रामजीको लेनेको तुम आये हो सो रोगी होय रहा है। उसको चिंता ऐसी आय लगी है, जिसकर वह महादुर्बल हो गया है, अरु अंतःपुरमें एकांत में बैठ रहता है,खाना पीना इत्यादिक जो राजकुमारकी चेष्टा है सो सब उसको बिरस हो गई हैं, अरु मैं नहीं जानता जो उस को क्या दुःख प्राप्त हुआ है, जैसे कमल सूखके पीतवर्ण हो जाता है, तैसा उसका मुख होगयाहै,उस को युद्ध करने की समर्थता नहीं, अरु अपने स्थानतें बाहिरकी पृथ्वीहु नहीं देखी है. सो युद्ध कैसे करैंगे हे मुनीश्वर । यह युद्ध करनेको समर्थ नहीं है,अरु हमारे प्राण वही हैं, जो उसका वियोग होवैगा तौ हमारा जीवना नहीं होवैगा । जैसे जल विना मच्छी जीवती नहीं है, तैसे रामजीबिना कैसे जीवैंगे । अरु राक्षस के युद्ध निमित्त कहोतो हम तुमारे साथ चलें अरु रामजी युद्ध करने को योग्य नहीं ।

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्य प्रकरणे दशरथोक्तिवर्णनं नाम पंचमः सर्गः ५

षष्ठः सर्गः ६.

अथ राम समाज वर्णनं ।

वाल्मीक उवाच–हे भारद्वाज । जब इस प्रकार राजा दशरथ नें कहा तब महादीन जैसे मोह

सहित अधैर्यवान् वचन सुनकर, क्रोधसों विश्वामित्र कहत भया।
विश्वामित्र उवाच—हे राजन्! तूं अपने धर्मका स्मरण कर यह प्रतिज्ञा तैनें करी है। जो तेरा अर्थ होवैगा सो पूर्ण करौंगा, औ पूर्ण हुवा जानना, ऐसा तुमनें कहा है, अब तूं अपने धर्मको त्यागता है, और जो तूं सिंह हुवा मृगोंकी नांई भाजता है तौ भाज, परंतु आगे रघुवंशमें ऐसा कोई नहीं हुवा, जैसे चंद्रमा के मंडलमें शीतलता होती है, अग्नि निकसता नहीं, तैसे तुमारे कुलविषे ऐसा कदाचित नहीं हुआ अरु जो तूं करता है तौ कर, हम उठ जायेंगे, काहतें, जो सूने गृहतें सूनेई जाता है, परन्तु यह तुमको योग्य न था, अरु तुम बसते रहो, राज्य करते रहो, अरु जो कछु होवैगा सो हम समझ लैंगे, अरु जो अपने धर्म को तूं त्यागता है, तौ त्याग दे।
वाल्मीक उवाच—हे भारद्वाज! इसप्रकार जब संपूर्ण क्रोधायमान होकर विश्वामित्र बोल्या, तब इसके क्रोधकर पचास कोटि पृथ्वी कंपने लगी, अरु इंद्रादिक देवताभी भयको प्राप्त हुवे, जो ये क्या हुवा, तब वासिष्ठ बोले।
वसिष्ठ उवाच—हे राजा! इक्ष्वाकुके कुलमें सब परमार्थी हुए हैं, औ तू दशरथ अपने धर्मको क्यों त्यागता है। मेरे विद्यमान तैनें कहा है, जो तुमारा

अर्थ होवैगा, सो मैं पूर्ण करौंगा, अब तूं क्यों मा-
जता है। रामजीको इसके साथ दे, अरु यही तेरे
पुत्रकी रक्षा करैगे, जैसे सर्पतें अमृतकी रक्षा गरुड़
करता है, तेरे पुत्रकी रक्षा यह करैगा, अरु यह कैसा
पुरुष है, सो श्रवण करौ, इसके समान बल किसी
का नहीं, साक्षात धर्मकी मूर्ति है, अरु ऐसे और
तापसी कोऊ नहीं है, अरु तपकी खानी है, अरु
इसके समान कोऊ बुद्धिमान् नहीं है, अरु इसके स-
मान कोई शूर नहीं है, अरु अस्त्र शस्त्र विद्या में
इसी जैसा कोऊ नहीं है। काहेतें जो दक्षप्रजापति
की दोई पुत्रीथी, एक जया, अरु एक सुभगा, सो
ये ऋषीको दीनी हैं, अरु जयाथी तिसको दैत्यके मा-
रने निमित्त पांचसौ पुत्रको प्रगट किये थे, अरु
सुभगाके भी पांचसौ पुत्र भये थे, सो सब
दैत्य के नाश निमित्त उत्पन्न किये थे,
सो स्त्रियां इसके विद्यमान मूर्ति धरिके स्थि-
त हुई हैं, तातें इसको जीतने कोई समर्थ नहीं
है, जिसका साथी विश्वामित्र होवै, सो त्रिलोकी में
काहुसों डरे नहीं, तातें इसको इसकेसाथ तूं अपना
पुत्र दे, अरु संशय मत कर, किसीकी सामर्थ्य नहीं
जो इसके होते तेरे पुत्रको कछु कोऊ कही सकै, इस-
की दृष्टिके देखनेतें दुःखका अभाव होजाता है, जैसे
सूर्यके उदयतें अंधकारका नाश हो जाता है।

हे राजन् ! इसके साथ तेरे पुत्रको खेद कहां होवै तूं इक्ष्वाकुक कुलका है, अरु दशरथ तेरा नाम है,सो तूं जैसे अब अपने धर्ममें स्थित न रहे तौ और जीवें धर्मकी पालना कैसे होयगी ! जोकुछ श्रेष्ठ पुरुष चेष्टा करतेहैं, तिनके अनुसार और जीव करते हैं, जो तुमसरखे अपने वचनको पालना न करेंगे तब किसीसो कहां बनैगी ? अरु तुमारे कुलमें ऐसा वचन सों फिरना कबहु हुवा, तातें अपने धर्मको त्यागना योग्य नहीं, तूं अपने पुत्रको दे;अरु जो तू उनके मायकर शोकवान् होवै तौभी ना मत कहै, औ मूर्तिधारी काल आयकर स्थित होवे तौ भी विश्वामित्रके विद्यमान तेरे पुत्रको कछु होवै नहीं, तूं शोक मतकर, अपने पुत्रको इसके साथ दे, अरु जो न देगा, तौ दो प्रकार का तेरा धन नष्ट होवैगा, एक धन यह है, जो कूप,बावरी, ताल, कराये होयेंगे तिनका जोपुण्य है, सो नष्ट हो जावैगा, अरु तप, व्रत, यज्ञ, दान, स्नानादिक जो पुण्य है, अरु क्रिया है, तिन सबकाफल नष्ट होजावैगा, और तेरा गृह निरर्थक होय जावैगा तातें मोह अरु शोकको त्याग, अरु अपने धर्मको स्मरण कर, रामजी इसके साथ दे, तेरे सब कार्य सफल होवैंगे ।

हे राजन् ! इस प्रकार जब तेरे करना था, तब प्रथमही विचारकर कहना था; काहेतें, विचारविना

काम करने का परिणाम दुःख होता है, तातें इसीके साथ तेरे पुत्रको देहु ।

वाल्मीक उवाच-हे भारद्वाज ! जब इस प्रकार वसिष्ठजीनें कहा, तब राजा दशरथ धैर्यवान् होकर भृत्यमें जो श्रेष्ठ भृत्य था, वाको बुलायकर कहत भया, हे महाबाहो ! रामजीको ले आओ, तब इसके साथ जो चाकर अंतरबाहिर आनेजानेवाला था, अरु छलतें रहित था, सो राजाकी आज्ञा लेकर रामजी के निकट गया; एक मुहूर्तपाछे पीछा आया, अरु कहत भया, हे देव ! रामजी तौ बडी चिंता में बैठे हैं, मैं रामजीको वारंवार कहा, जो अब चलियें; तब वह कहत हैं जो चलें हैं, ऐसे कही कही चुप हो रहे हैं ।

हे भारद्वाज ! इस प्रकार जब राजानें श्रवण किया तब कहा, रामजीके मंत्री अरु टहलुए सब बुलाओ, सबको बुलाय निकट ल्याये, तब राजा आदरसों कोमल सुंदर बचन युक्तियों कहत भया, हे रामजी के प्यारे, रामजी की कहा दशा है? औ ऐसीदशा क्योंकर हुई है ? सो सब क्रम करके कहौ ।

मंत्र्युवाच-हे देव ! हम कहा कहैं, जेते हम कछु दृष्टिमें आते हैं,सो सब आकार, अरु प्राण देखनेमात्र हैं. परंतु सब हम मृतक हैं,काहेतें, जो हमारा स्वामी रामजी बडी चिंताको प्राप्त हुआ है, हे राजन्! जिस

दिनसे रघुनाथजी तीर्थकर आये हैं,तिस दिनसे चिंताको प्राप्त भये हैं जब उत्तम भोजन हम ले जाते हैं,औ पान करनेका पदार्थ औ पहरनेका पदार्थ,अरु देखनेका पदार्थ कछु ले जाते हैं, सो सुखदायी पदार्थ रससहित देखिके किसीप्रकार प्रसन्न हो गई तौ भला,परन्तु हमने नहीं देख्या है, ऐसी चिंताके विषे वह लीन हैं, जो देखता भी नहीं, अरु जो देखता है, तौ क्रोध करता है, अरु सुखदायी पदार्थ का निरादर करता है, अरु अंतःपुरमें इनकी माता,नानाप्रकार के हीरे अरुमणीके भूषण देती है, तौ उनको डार देता है, नहीं तौ किसी निर्धन को देता है,प्रसन्न किसी पदार्थपै होते नहीं हैं,सुंदर स्त्रियां विद्यमान खडी होतियां हैं,नाना प्रकारके भूषण सहित महामोह करनेहारियां निकट होई करि लीला करतियां हैं, कटाक्षहुसहित प्रसन्न करने निमित्त, तौ भी विषवत् जानता है,उनकी ओर देखताभी नहीं,जैसे पपैया अवर जलकौं देखताभी नहीं, जब अंतःपुरविषं निकसता है, तब उनको देखिकरि क्रोधवान् होता है।

हे राजन्! अवर कछु उसको भला नहीं लगता,किसी बडी चिंताविषे मग्न है,और तृप्तहोकर भोजन नहींकरता क्षुधावंत रहता है, न कछु पहरने, खाने, पीने की इच्छा रखता है, न राज्य की इच्छा है, न किसी इंद्रिय हूंके सुखकी इच्छा है, महाउन्मत्त की नाईं बैठा रहता है,

अरु जब कोई सुखदायी पदार्थ फूलादिक ले जातेहैं, तब क्रोध करता है, हम नहीं जानते जो क्या चिंता उसको भई है, एक कोठरीमें पद्मासन करके अरु हाथमें सुखधरी बैठ रहते हैं, अरु जो कोऊ बड़ा मंत्री आयके पूछता है, तब रातको कहता है, जो तुम जिसको संपदा मानते हो सोई आपदा है, जिसको आपदा जानते हो जो रमणीयकर जानते हो, सो सब झूठे हैं, याहीमें सब डूबते हैं, ये सब मृगतृष्णाके जलवत् हैं, तिनको सत्य जानी मूर्ख जो हरिण सो दौरते हैं, अरु दुःख पावते हैं,

हे राजन्! कदाचित बोलते हैं तो ऐसे बोलते हैं, और कछु उनके और सुखदायी नहीं भासता है अरु, जो हम हांसीकी बातें करते हैं, तौ वह हंसत नहीं है, जिस पदार्थको प्रीतिसंयुक्त लेते थे, तिस पदार्थको अब डारि देते हैं, अरु दिनदिनपै दुर्बल जैसें होत जाते हैं अरु अंतःपुर में स्त्रियोंके पास बैठते हैं, तब वह नाना-प्रकारकी चेष्टा रामजीकोप्रसन्न करनेनिमित्त दिखावती हैं इनको भी देखके प्रसन्न नहीं होते, अरु जैसे मेघकी बूंदतें पर्वत चलायमान नहीं होते हैं, तैसे आप चलाय-मान नहीं होते हैं, अरु जो बोलते तो ऐसे कहते हैं, न राज्य सत्य है, न भोग सत्य है न इह जगत् सत्यहै, न भ्रात सत्य है, न मित्र सत्य है, मिथ्या पदार्थ के निमित्त मूर्ख परे यत्न करते हैं जिनको सत्य जानतेहैं

अरु सुखदायक जानतेहैं, सो बंधन का कारण है, और कहा कहियें ! जो कोई इनके पास राजा अथवा पंडित जावै, तिनको देखकर कहतेहैं यह पशु हैं, आशारूपी फांसीकर बांधे हुएहैं ।

हे राजन् ! जो कछु भोग्य पदार्थ हैं तिनको देखकर उनका चित्त प्रसन्न नहीं होता, अरु देखके क्रोधवान् होता है, जैसे पपैया मारवाड़ में आवे, तब मेघ की बूंदहु देखता नहीं है, तातें खेदवान होता है, तैसे रामजी त्रिपहूतें खेदवान होते हैं, हे राजन् ! इनकर के हर्षवान नहीं होता, तातें हम जानतेहैं, जो इनको परमपद पावनेकी इच्छा है, परंतु कदाचित सुखतें सुन्या नहीं है, अरु त्याग का अभिमान भी कदाचित सुन्या नहीं है, कबहु गाते हैं, अरु बोलते हैं, तब ऐसे कहते हैं हाय हाय ! मैं अनाथ मार्या गया हौं, अरे मूढ़ ! तुम संसारसमुद्र क्यों डुबते हौं । यह संसार परम अनर्थका कारण है, इसमें सुख कदाचितहु नहीं है, इसतें छूटनेका उपाय करो ।

हे राजन ! ऐसे भी कदाचित हम सुनते हैं अरु किसी साथ बोलते नहीं हैं, न हंसते हैं, न मंत्री के साथ, न अपने अंतःपुरकी स्त्रियोंके साथ; की न माता केसाथ बोलते हैं,कोऊ परमचिंतामें मग्न हैं, अरु किसी पदार्थकर आश्चर्यवान् नहीं होते, जो कोऊ कहै की आकाशमें बाग लगा है, तिसतें फूल फुले

हैं, तिनको मैं ले आया हौं, ऐसे सुनकर भी आ-
श्चर्यवान् नहीं होते, सब भ्रममात्र देखते हैं, न
किसी पदार्थतें उनको हर्ष होता है । न किसी
पदार्थ तें उनको शोक होता है, किसी बडी
चिंतामें मग्न हैं, सो कोऊ चिंता निवारनेमें हम
समर्थ नहीं देखते हैं, वह तौ चिंताके समुद्रमें मग्न
है, हे राजन् ! यह चिंता हमको लग रही है, जो
रामजी को न खानेकी इच्छा है,न पहिरनेकी इच्छा
न बोलने की न देखने की इच्छा रही है । न
कोऊ कर्मकी इच्छा रही है, तातें मृतक न हो जावे
ऐसी चिंता है; अरु जो कोई कहता है,को तू चक्रवर्ती
राजा है, तेरो बड़ो आयवल होहु, अरु बड़े सुखको
पाओ, तब तिसके वचन सुनकर कठोर बोलते हैं ।

हे राजन् ! केवल रामजीकोही ऐसी चिंता नहीं,
लक्ष्मण और शत्रुघ्नको भी ऐसी चिन्ता लग रही
है, रामको देखकर जो कोऊ उनकी चिंता दूर करन-
हारा होवे तो करो, नहीं तो वही चिंतामें ही डूबी र-
हैंगे, किसी पदार्थकी इच्छा उनको नहीं रहत है ।

हे राजन् ! और कहा कहौं ! तुमारा पुत्र अब अ-
तीत होय रह्या है, एक वस्त्र उपरना ओढी बैठा है,
तातें सोई उपाय करो, जिसकर उनकी चिन्ता नि-
वृत होवै ।

विश्वामित्र उवाच—हे साधु ! जो रामजी ऐसे हैं ।
तो हमारेपास लाओ, हम उसका दुःख निवृत्त करैंगे,

हे राजा दशरथ । तुम धन्य हौ । जिसका पुत्र विवेक अरु वैराग्यको प्राप्त भया, हे राजन् । हम जो बैठे हैं, सो तुमारे पुत्रको परमपदकी प्राप्ति करैंगे, अबी सब दुःख उसके मिट जायेंगे, हम वसिष्ठादि जो बैठे हैं, सो एक युक्तिकरि उपदेश करैंगे, तिसकर उसको आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी, तब वह दशा तेरे पुत्रकी होवैगी, जो लोष्ट अरु पत्थर सुवर्णको समान जानैंगे, अरु जो कछु तुमारे क्षत्रियकी प्रकृतिका आचरण है, सो करैंगे, अरु हृदयमें प्रेमतें उदासी होवैंगे, तातें हे राजन् । उसकर तुमारा कुल कृतकृत्य होवैगा, तातें रामजीको शीघ्र बोलावहु ।

वाल्मीक उवाच—हे भारद्वाज ! ऐसे मुनींद्रके वचन सुनकर राजा दशरथ मंत्री अरु नौकरको कहत भया, जो रामजी अरु लक्ष्मण, भरत, अरु शत्रुघ्न को साथ ले आओ, जैसे हरिणीको हरिण ले आतहैं, तैसे ले आओ, जब राजा दशरथनें ऐसा कहा, तब मंत्री अरु भृत्य रामजीके पास जायके कह्या, तब रामजी आये, सो आवत आवत राजा दशरथ, अरु वसिष्ठजी, अरु विश्वामित्र को देखे, तिनोंके पर चमर होय रहे हैं, अरु बडे मंडलेश्वर बैठे हैं, तिननेंहु रामजीको देखे, जो शरीरतें कृश होय रहे हैं, जैसे महादेवजी स्वामी कार्तिकको आवत देखै, तैसे रामजीको आते राजा दशरथ देखते हैं, तहां राम-

जी आयकर राजा दशरथजीके चरणपैं मस्तक ल-
गाय नमस्कार किया, फेर तैसेइ वसिष्ठजी को अरु
विश्वामित्रको नमस्कार किया, बहुरि सभामें जो ब्रा
ह्मण बडे बडे बैठे थे, तिनको हु नमस्कार किये अरु जो
बडे २ मंडलेश्वर बैठे थे, तिननें उठकर रामजी को
प्रणाम किया ।

फिर राजा दशरथनें रामजीको गोदमें बैठाया, अरु
देखकर मस्तक चुंब्या, अरु बहुत प्रेमपुलकित होय
रामजीको कहत भया, हे पुत्र । केवल विरक्ताकर
परमपदकी प्राप्ति नहीं होती है, अरु वसिष्ठजी गुरु
हैं, तिनको उपदेशकी युक्ति कर परमपद की प्राप्ति
होयगी ।

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! तुम धन्य हो । अरु
बडे सूरमा हो, जो विषयरूपी शत्रु तुमनें जीते हैं,
विषय अजित हैं, अरु दुष्ट हैं, ताको, तुमने जीते
तातें तुम धन्य हो । धन्य हो !!

विश्वामित्र उवाच—हे कमलनयन राम ! अपने
अंतरकी चपलता है, तिसको त्याग करके जो कुछ
तुमारा आशय होय सो प्रकट कर कहो, हे रामजी !
यह जो तुमको मोह प्राप्त हुआहै । सो कैसे हुआहै ? अरु
किस कारण हुआहै । अरु केताकहै । सो कहो, अरु जो
अब कुछ तुमको वांछित होय, सो कहो, हम तुम
को तिसी पदमें प्राप्त करेंगे, जिसमें दुःख कदाचित
होवै नहीं, औ आकाशको चुहा काटी नहीं सकत

है; तैसे तुमको पीडा कदाचित न होवैगी, हे रामजी तुमारे संपूर्ण दुःख नाशकर देयगे, तुम संशय मत करौ, जो कछु तुमारा वृतान्त होय सो हम को कहौ ।

वाल्मीक उवाच—हे भारद्वाज ! जब ऐसे विश्वामित्रने कहा, सो सुनकर रामजी बहुत प्रसन्न भये, अरु शोकको त्याग दिया, जैसे मेघको देखके मोर प्रसन्न होता है, तैसे विश्वामित्र के बचन सुनकर रामजी प्रसन्न हुए, अरु अपने हृदयमें निश्चय किया जो अब मुझको उस पदकी प्राप्ति होवैगी ।

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे रामसमाज वर्णन नाम षष्ठः सर्गः ६

सप्तमः सर्गः ७

अथ रामेण वैराग्य वर्णनं.

वाल्मीक उवाच—हे भारद्वाज ! ऐसे मुनीश्वर के वचनको रामजी सुनके बहुत प्रसन्न होयके बोले ।

श्रीराम उवाच—हे भगवान ! जो वृतान्त है, सो तुमारे विद्यमान क्रमकर के कहता हौं, इस राजा दशरथ के घरमें जो जन्म पाया हौं, बहुरि क्रमकरके बडा हुआ हौं, औ उपवीत पाया हौं, अरु चारों वेद पढकर ब्रह्मचर्यादि व्रत पायाहौं, तापाछे एक दिन पढि

के मैं घरमें आया, तब मेरे हृदयमें बात आयरही जो तीर्थाटन करौं, अरु देवद्वारमें जायके देवनके दर्शन करौं, तब मैं पिताकी आज्ञा लेकर, तीर्थको गया, अरु गंगा आदि संपूर्ण तीर्थमें स्नान किया, अरु शालिग्राम और केदार आदि ठाकुर के विधि संयुक्त दर्शन किये, अरु यात्रा करके इहां आया, फिर उत्साह हुआ।

तब मेरेमें बिचार आया,जो प्रातःकाल उठके स्नान संध्यादिक कर्म करना, बहुरि भोजन करना, ऐसेइस प्रकारसों केतेक दिन व्यतीत भये, तब मेरे हृदयमें विचार उत्पन्न हुआ; सो विचार मेरे हृदयको खैंच ले गया,जैसे नदीके तटपर तृणवल्ली होतहै, तिसको नदीका प्रवाह खैंच ले जाता है,तैसे हृदयमें जो कछु रजतकी आस्थारूप बल्ली थी, सो विचाररूपी प्रवाह लेगया, तब मैं जानत भया जो राज्यकरके क्या है, अरु भोगतें क्या है, अरु जगत क्या है ? सब भ्रम मात्र है, इसकी वासना मूर्ख रखते हैं, यह स्थावर जंगमरूपी जेता कछु जगत है, सो सब मिथ्या है।

हे मुनीश्वर ! जैसे कुछ पदार्थ हैं सो सब मनसों करके हैं, सो मन भी भ्रममात्र है, अन होता मन दुःखदाई हुआ है, मन जो पदार्थ सत्य जानकर दौरता है, अरु सुखदायक जानता है, सो मृगतृष्णाके जलवत है, जैसे मृगतृष्णाको देखकर मृग दौरते हैं

अरु है नहीं, सो मृग दौरत दौरत थकके पड़ जातेहैं तौहू जल तिसको प्राप्त नहीं होता, तैसे मूर्ख जीव पदार्थको सुखदाई जानकर भोगनेका यत्न करताहै, अरु शांतिको नहीं पावता है, तैसे-

हे मुनीश्वर। इंद्रियके भोग सर्पवत् हैं जिनकामाऱ्या हुआ जन्ममरणको पावताहै,जन्मतें जन्मांतरको पावता है, भोग अरु जगत सब भ्रममात्र हैं, तिनविषे जो आस्था करते हैं, सो महामूर्ख हैं ऐसा मैं विचार करके जानता हौं जो सब आगमापायीहैं, अर्थ यह जो आवतेहू हैं, तातें जिस पदार्थका नाश न होय, सो पदार्थ पावने योग्य है, इसी कारणतें मैं भोग का त्याग किया है।

हे मुनीश्वर! जेते जो कछु संपदारूप पदार्थ भासते हैं सो सब आपदा हैं, इनमें रंचकहू सुख नहीं है,जब इनका वियोग होता है, तब कंटककी नाईं मनमें चुभता है, जब इंद्रियको भोग प्राप्त होता है, तब राग द्वेषकर जलते हैं,अरु जब नहीं प्राप्त होता तब तृष्णाकर जलते हैं,तातें भोग दुःखरूप हैं,जैसे पत्थरकी शिलामें छिद्र नहीं होता, तैसे भोगरूपी दुःखकी शिलामें रंचक भी सुखरूपी छिद्र नहीं होता है।

हे मुनीश्वर? विषयकी तृष्णामें बहुत कालसों जलता रह्या हौं, जैसे हर्या वृक्ष के छिद्रमें रंचक अग्नि धऱ्या होय, तब धुंवा होय थोरा थोरा जलता रहता है, तैसे

भोगरूपी अग्निकरके मन जलता रहता है,इन विषयमें सुख कछुहू नहीं, अरु दुःख बहुत है, इनकी इच्छा करनी सोई मूर्खता है,जैसे खाईके ऊपर तृण अरु पान होता है, तिसकर खाई आच्छादित होय जातीहै, तिस-को देखके हरिण कूद परता है,अरु दुःख पावताहै, तैसे मूर्ख भोग को सुखरूप जानिके भोगनेकी इच्छा करताहै, जब भोगता है, तब जन्मतें जन्मांतररूपी खाईमें जाय परता है, अरु दुःख पावता है ।

हे मुनीश्वर ! भोगरूपी चोर है,सो अज्ञानरूपी रात्रमें लूटने लगता है,सो आत्मरूपी धन है, तिसको ले जाता है, तिसके वियोगतें महादीन रहता है, अरु जिस भोगके निमित्त यह यत्न करता है सो दुःखरूप है, शांतिको प्राप्त नहीं होता,अरु जिस शरीरका अभिमान करके यह यत्न करता है, सो शरीर क्षणभंग होता है; अरु असार है, जिसको सदा भोगकी इच्छा रहती है, सो मूर्ख अरु जड़ है, इसका बोलना चलना भी ऐसा है, जैसे सूके वांशके छिद्रमें पवन जाता है,अरुपवनके वेगकर शब्द होता है, तैसे उस मनुष्य को वासना है, जैसे थक्याहुआ मनुष्य मारवारके मार्गकी इच्छा नहीं करता तैसेदुःख जानकर मैं भोगकी इच्छानहीं करताहौं।

अरु यह जो लक्ष्मी है, सो परम अनर्थकारी है,जब-लग इसी प्राप्ति नहीं होती, तबलग इसको पावनेका यत्न होता है अरु अनर्थकरके प्राप्ति होती है, अरु जब

प्राप्ति हुई, तब सब गुणनका नाशकर देतीहै, शीतलता संतोष, धर्म, उदारता, कोमलता, वैराग्य, विचार, दयादिक गुणनका नाश करती है,जब ऐसा गुणनका नाश हुआ,तब सुख कहांतें होय? परम आपदाप्राप्त होतीहै,परम दुःखका कारण जानकर मैं इसका त्याग किया है. हे मुनीश्वर! इसमें गुण तबलगहै,जबलग लक्ष्मी नहीं प्राप्त भई, जब लक्ष्मीकी प्राप्ति भई तब सब गुण नाश हो जाताहै,जैसे वसंतऋतुकी मंजरी हरियावल तबलग रहती है, जबलग ज्येष्ठ आषाढ नहीं आया; जब ज्येष्ठ आषाढ आया, तब मंजरी जर जाती है, तैसे जब लक्ष्मीकी प्राप्ति भई तब शुभ गुण जर जाते हैं, अरु मधुर वचन तबलग बोलता है.जब-लग लक्ष्मीकी प्राप्ति नहीं है। जबही लक्ष्मीकी प्राप्ति भई,तब कोमलताका अभाव होय कठोर हो जाता है, जैसे जल पतरा तबलग रहता है,जबलग शीतलताका संयोग नहीं होय, जब शीतलताका संयोग होता है. तब बरफ होकर कठोर दुःखदायक होय जाता है, तैसे यह जीव लक्ष्मीसोंकर जड होय जाता है,

हे मुनीश्वर! जो कछु संपदा है सो आपदाका मूल है, काहेतें जो जब लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है, तब बडे सुखको भोगता है, अरु जब तिसका अभाव होताहै, तब तृष्णाकरके जलता है,जन्मतें जन्मांतरको पावताहै लक्ष्मीकी इच्छा है, सोई मूर्खता है, यह तो क्षणभंग

है . यातें भोग उपजता है, अरु नाशभी होता है,जैसे जलतें तरंग उपजते हैं ,अरु मिट जाते हैं ,बिजुरी स्थिर नहीं होती है,तैसे भोगहु स्थिर नहीं रहते,अरु पुरुष में शुभ गुण तबलग हैं,जबलग तृष्णाका स्पर्श नहींकिया, जब तृष्णा भई तब शुभ गुणका अभाव होय जाताहै, जैसे दूधमें मधुरता तबलग है,जबलग सर्पनें स्पर्श नहीं किया,जब सर्पनें स्पर्श किया तब दूध है सो विषरूप हो जाता है,

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे रामेण वैराग्य वर्णनं नाम सप्तमः सर्गः ७,

---

अष्टम सर्गः ८

अथ लक्ष्मीनैराश्यवर्णनं ।

श्रीराम उवाच—हे मुनीश्वर । लक्ष्मी देखनेमात्रही सुंदर है,अरु जब इसकी प्राप्ति हुई तबसद्गुणका नाश कर देती है,जैसे बिषकी वल्ली देखने मात्रसुंदर है,अरु स्पर्श किएतें मार डारती है, तैसे लक्ष्मी की प्राप्ति हुए, आत्मपदतें मृतक होता है, अरु महादीन होय जाता है,जैसे किसीके घरमें चिंतामणि दबी रही, ताको खोदकर लेवै नहीं, तबलग दरिद्री रहता है,तैसे अज्ञानकर ज्ञानविना महादीन जैसा हो रहताहै,आत्मानंदको पाई नहीं सकता,आत्मानंदको पालनेकाजोमार्ग

है, तिसके नाश करनहारी लक्ष्मी है,इसकी प्राप्तितें जीव महाअंधक होय जाता है।

हे मुनीश्वर! जब दीपक प्रज्वालित होता है,तब उसका बड़ा प्रकाश दृष्ट आवता है,जब दीपक बुझ जाता है तब प्रकाशका अभाव होय जाता है,अरु काजरकी श्यामता रही जातीहै, जो वारंवार वासना उपजती थी, सो रहती है, तैसे जब इस लक्ष्मी की प्राप्ति होती है, तब बड़े भोग उनको भुगवातीहै, अरु तृष्णारूप काजर उसतें उपजता रहता है, जब लक्ष्मी का अभाव होताहै, तब वासना तृष्णाकी श्यामता छांड जाती, तिस वासना तृष्णाकरके अनेक जन्मको अरु मरणको पावताहै, शांतिको कदाचित् नहीं प्राप्त होता।

हे मुनीश्वर!जब जिसको लक्ष्मी की प्राप्ति होती है, तब शांति के उपजावनहारे गुणका नाश करती है,जैसे जबलग पवन नहीं चलता, तबलग मेघ रहता है, जब पवन चल्याके मेघका अभाव हो जाताहै, तैसे लक्ष्मी की प्राप्ति हुए गुणका अभाव होता है, अरु गर्वकी उत्पत्ति होती है।

हे मुनीश्वर! जो सूरमा होइके अपने मुखतें अपनी बड़ाई न कहै, सो दुर्लभ है, अरु समर्थ होय कोईकी अवज्ञा न करै, सबमें समबुद्धि राखै, सो दुर्लभ है, तैसे लक्ष्मीवान् होकर शुभगुणसंयुक्त होय सो भी दुर्लभ है।

हे मुनीश्वर। तृष्णारूपी जो सर्प है तिसको बढाव-ने का स्थान लक्ष्मी रूपी दूध है, सो पीवता पवनरूपी भोगका आहार करता कदाचित् अघाता नहीं, अरु महा मोहरूप उन्मत्त हस्ती है तिसको फिरने का स्थान पर्वतकी अटवीरूपी लक्ष्मी रात्रीहै,अरु गुणरूप सूर्यमुखी कमलहै, तिसकी लक्ष्मी है, अरु भोगरूपी चंद्रमुखी कमल है तिनकी लक्ष्मी चंद्रमा है, अरु वैराग्यरूपी जो कमलिनी है, तिसका नाश करनेहारी लक्ष्मी बरफ है, अरु ज्ञानरूपी जो चंद्रमाहै, तिसका आच्छादन करनेहारी लक्ष्मी राहुहै, अरु मोहरूपी जो उलूक है, तिसकी यह रात्री है, अरु दुःखरूपी जो बिजुरीहै, तिसकी लक्ष्मी आकाशहै, अरु तृष्णारूपी जोवल्लीहै तिसको बढावनेहारी लक्ष्मी मेघ है अरु तृष्णारूपी जो तरंगहै, तिसकी लक्ष्मी समुद्रहै, अरु भोगरूपी पिशाच हैं, तिनकी लक्ष्मी रात है अरु तृष्णारूपी भंवरको लक्ष्मी कमलिनी है, जन्मके दुःखरूप जलका यह लक्ष्मी खड्डा है।

हे मुनीश्वर। देखनेमात्र यह सुंदर लगती है अरु दुःखका कारण है, जैसे खंगकी धारा देखने मात्र सुंदर होती है, अरु स्पर्श कियेतें नाश करती है, तैसी यह लक्ष्मी है, सो विचाररूपी मेघका नाश करने में वायु जैसी है।

हे मुनीश्वर। यह मैं विचारि देख्या है, इसमें सुख कछुहू नहीं,अरु संतोषरूपी मेघका नाश करनेहारा यह शरत्कालहै,अरु इस मनुष्यमें गुण तबलगदृष्ट, आवै, जबलग लक्ष्मी प्राप्ति कहीं भई, जब लक्ष्मी की प्राप्ति भई, तब शुभ गुण नाश पावते हैं,

हे मुनीश्वर! लक्ष्मी ऐसी दुःखदायक जानकर इन की इच्छा मैंने त्याग दीनी है, यह भोग मिथ्यारूपीहै, जैसे बिजुरी प्रगट होयछिप जाती है, तैसे यहलक्ष्मीहु प्रगट होय छिप जाती है, जैसे जल है सो हिमहै तैसे लक्ष्मीकी ज्योति है, सो मूर्खजडके आश्रयतें हैं. इस को छलरूप जानकर मैंने त्याग किया है,

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे नैराश्य वर्णन नामा ष्टमः सर्गः ८

नवमः सर्गः ९

अथ संसार सुख निषेध.

राम उवाच—हे मुनीश्वर। जो याको देखकर प्रसन्न होता है, सो मूर्ख है, काहेतें, जैसे पत्रके ऊपर जलकी बूंद न रहती है, तैसे लक्ष्मी क्षणभंग है, जैसे जलके तरंग होयके नाश पावते हैं ,तैसे लक्ष्मी होयके नाश पावती है,

हे मुनीश्वर। पवन को रोकना कठिन है, सो भी कोउ रोकता है, अरु आकाशका चूर्ण करना अति कठिनहै, सोभी कोउ करडारै, अरु विजुरीको रोकना अति कठिन है, सो भी कोउ रोकै है, परंतु लक्ष्मी पायके कोउ स्थिर होवै सो नहीं, जैसे शशाके सिंगसों कोउ मार नहीं शकता, अरु आरशीके उपर जैसे मोती नहींठहरताहै, जैसे तरंगकी गांठ नहीं करत है, तैसे लक्ष्मीहु स्थिर नहीं रहती है, लक्ष्मी विजुरीका चमका जैसी है, सो होतीहु है, अरु मीट भी जाती है, अरु लक्ष्मी पायके आपको अमर हुआ चाहै, सो महामूर्ख जानना; अरु लक्ष्मीको पायकर जो भोगकी वांछाकरत है सो महा आपदाका पात्रहै, जिनकोजीवनेतेंमरना श्रेष्ठ है, जीवनेकीआशा मूर्ख करते हैं, सो अपने नाशके निमित्त करते हैं, जैसे स्त्री जो गर्भकी इच्छा करती है सो अपने नाशके निमित्त करती है ।

अरु ज्ञानवान् पुरुष हैं, जिनकी परमपदमें स्थितिहै, अरु जिसकर तृप्ति पायेहैं, तिनका जीवना सुखकेनिमित्त है, तिनके जीवनेतें औरका कार्य भी सिद्ध हो जाताहै, तिनका जीवना चिंतामणिकी नांई श्रेष्ठ है, अरु जिनको सदा भोगकी इच्छा रहती है, औ आत्मपदतें बिमुख हैं तिनका जीवना किसी सुखके निमित्त नहीं है वह मनुष्य नहीं, गर्दभ है, अरु जैसे वृक्ष पक्षी पशुकाजीवना है, तैसे तिनका भी जीवनाहै ।

हे मुनीश्वर ! जो पुरुष शास्त्रपढ्याहैअरु पावनेजोग्य पद नहीं पाया, तब शास्त्र उसको भाररूप है, जैसे औरको भार होता है, तैसे पढने का भी भार है, अरु पढके विचार चर्चा करता है, औ तिसके सारको नहीं ग्रहण करता, तौ यह विचारचर्चाहु भार है ।

हे मुनीश्वर ! मन जो है सो आकाशरूप है,सोमन में जो शांति न आई, तौ मनहु उसको भार है,अरुजो मनुष्यशरीरको पाया है,उसका अभिमान नहीं त्यागना है,तौ यह शरीर भी उसको भार है, इस शरीर का जीवना तबही श्रेष्ठ है ! जब आत्मपदको पावै, अन्यथा उसका जीवना व्यर्थ है, औ आत्मपदकी प्राप्ति अभ्यासकर होतीहै, जैसे जल पृथ्वीतें खोदेतें निकसता है, तैसे अभ्यासकर आत्मपदकी प्राप्ति होती है, अरु जो आत्मपदतें विमुख होय आशाकी फांसीमें फसैहै, सो संसारमें भटकत रहता है ।

हे मुनीश्वर ! संसारके तरंग अनेक कालसों उत्पन्न होय नष्ट होय जातेहैं तैसे यह लक्ष्मीहू क्षणभंगुर है, इसको पायके जो अभिमान करता है सो मूर्ख है, जैसे बिल्ली चूवाको पकड़नेके लिये परी रहती है तैसे लक्ष्मी उसको नरकमें डारनेके लिये घरमें परी रहती है जैसे अंजली में जल नहीं ठहरता, तैसे लक्ष्मी चली जातीहै, ऐसी क्षणभंग लक्ष्मी अरु शरीरको पायकर जो भोगकी तृष्णा करतहै सो महामूर्ख है,सो मृत्युके

मुखमें परे हुए जीवनेकी आशा करताहै ,जैसे सर्प के मुखमें मेंडुक पड़ता है सो मच्छरके खावनेकी इच्छा करता है यातें सो मूर्ख है, तैसे यह पुरुष मृत्युके मुख में पड़्या हुआ भोगकी वांछा करताहै, सो महा-मूर्ख है।

अरु जुवाअवस्था नदीके प्रवाहकी नांई चलीआती है, बहुरि बृद्धावस्था प्राप्त होती है, तामें महादुःख प्रगट होताहै, अरु शरीर जर्जर होय जाता है,फिर मरताहै, इक क्षणहु मृत्यु इनको विसारत नहींहै, सदाई देखत रहता है जैसे महाकामी पुरुषको सुंदर स्त्री मिलतीहै, तब उसको देखनेका त्याग नहीं करता, तैसे मृत्यु मनुष्यको देखे विना नहीं रहता है।

हे मुनीश्वर! मूर्ख पुरुष का जीवना दुःख निमित्त है,जैसे बृद्धमनुष्यका जीवना दुःखका कारण है, तैसे अज्ञानीका जीवना दुःखका कारण है,उसको बहुत जीवनेतें मरना श्रेष्ठ है, जो पुरुषमें मनुष्यशरीर पायकर आत्मपद पावनेका यत्न नहीं किया तिननें आपई आपका नाश किया है सो आत्म हत्यारा है।

हे मुनीश्वर! यह माया बहुत सुन्दर भासती है,परन्तु आखर नाशको पावती है,जैसे वृक्षको अंतरतें घुना खाय जाता है, अरु बाहिरतें बहुत सुंदर दिखता है, तैसेयह पुरुष बाहिरतें सुन्दर दृष्ट आवता है,अरुअंतरतें इनको तृष्णा खाय जाती है, जो पदार्थको सत्य अरु सुखरूप जानकर सुखके निमित्त आश्रय करता है सो

सुखी नहीं होता है, जैसे नदीमें सर्पको पकडके पार उतरया चाहै, सो पार नहीं उतरता है, वह मूर्खताकरके डुबैइगा, तैसे जो संसारके पदार्थको सुखरूप जानकर आश्रय करता है, सो सुख नहीं पावता, संसार समुद्रमेंई डुब जाता है ।

हे मुनीश्वर ! यह संसार इंद्रधनुषकी नांई है,जैसे इंद्रधनुष्य बहुत रंगका दृष्टिमें आवता है,अरु तिसतें अर्थसिद्धि कछुनहीं होती है,तैसे यह संसार भ्रममात्र है, इसमें सुखकी इच्छा रखनी व्यर्थ है, इस प्रकार जगतको मैं असत्रूप जानकर निर्वासना होनेकी इच्छा करीहै ।

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्य प्रकरणे संसारसुखनिषेध वर्णनं नाम नवमः सर्गः ।९

दशम सर्ग १०.

अथ अहंकारदुराशा वर्णनं ।

श्रीराम उवाच—हे मुनीश्वर!यह जो अहंकार उदय हुआ है, सो अज्ञान तें महादुष्ट है,अरु यहीपरमशत्रु है,इसनें मेरेको मार प्राप्त कियाहै अरु मिथ्या है, जेते कछु दुःख हैं, तिनकी खानी अहंकारहै,जब लग अहंकार है, तबलग पीडाकी उत्पत्तिका अभाव कदाचित नहीं होता है

हे मुनीश्वर ! जो कछु मैं अहंकारसों भजन किया अरु पुण्य किया है अरु जो लिया दिया है,औ कछु किया है, सो सब व्यर्थ है, इसकर परमार्थकी सिद्धि कछु नहीं है,जैसे राखमें आहुति धरी व्यर्थ होजाती है, तैसे जानत हौं; अरु जेते कछु दुःखहैं जिनका बीज अहंकार है, इसका नाश होवै तब कल्याण होवै, तातें तुम इसका उपाय मुझको कहौ जिसकर अहंकार निवृत्त होवै ।

हे मुनीश्वर ! जो वस्तु सत्य है, तिसका त्याग करनेमें दुःखहोताहै,अरुजो वस्तु नाशवान अरुभ्रम करके दिखातीहै, तिसके त्याग करनेतें आनन्द है, अरुशांतिरूपजो चंद्रमाहै,तिसको आच्छादन करनेका अहंकाररूपी राहु है,जब राहु चंद्रमा ग्रहण करताहै, तब उसकी शीतलता अरु प्रकाश ढप जातीहै तैसे जब अहंकार उपजताहै, तब समता ढप जातीहै, जबअहं काररूपी मेघ गरजके बरषता है,तब तृष्णारूपीकंटक-मंजरी बढ जाती है, सो कदाचित् घटत नहीं, जब अहंकारका नाश होवै तब तृष्णाका अभाव होवै,जैसे जबलग मेघ है, तबलग बिजरी है, जब विवेकरूपी पवन चलै, तब अहंकाररूपी मेघका अभाव होयके बिजुरी नाश पावती है, तैसे जबलग तेल अरुबाती है तबलग दीपक का प्रकाश है,जब तेलबातीकानाश होताहै तब दीपकका प्रकाश भी नाश पावता है,

तैसे जब अहंकारका नाश होवैतब तृष्णाका भीनाश होता है ।

हे मुनीश्वर ! परम दुःखका कारण अहंकार है,जब अहंकारका नाश होवै, तब दुःख का भी नाश होय जाय । हे मुनीश्वर ! यह जो मैं राम हौं, सो नहीं, अरु इच्छा भी कछु नहीं, काहेतें जो मैं नहीं तौ इच्छा किसकूं होवे, अरु इच्छा होई तौ यही होई जो अहंकारके रहित पदकी प्राप्ति होवै, जैसे जनींद्रको अहंकारका उत्थान नहीं हुआ, तैसा मैं होउं,ऐसी मुझको इच्छा है ।

हे मुनीश्वर ! जैसे कमलको बरफ नाश करता है, तैसे अहंकार ज्ञानका नाश करता है, तैसे पारधी जालसों करता है, बंधन पक्षीको तिसकर पक्षीदीन हो जाते हैं, तैसे अहंकाररूपी पारधीनें तृष्णारूपी जाल डारके जीवको बंधन किया है, तिसकर महादीन होगया है, जैसे पक्षी अन्नके कणको सुखरूप जानकर चुनने को आता है फिर चुगते फिरतेजाल में बंध जाता है तिस बंधनकर दीन हो जाता है, तैसेयह पुरुष विषयभोगकी इच्छा कियेतें तृष्णारूपी जालमें बंधन होय महादीन हो जाता है, तातें हे मुनीश्वर ! मुझको सोई उपाय कहो, जिसकर अहंकारका नाश होवे, जब अहंकारका नाश होवेगा

तब मैं परमसुखी होऊंगा, जैसे विंध्याचल पर्वतके आश्रयतें उन्मत्त हस्ती पडे गरजते हैं, तैसे अहंकाररूपी जो विंध्याचल पर्वत, तिसके आश्रयतें मन रूपी उन्मत्त हस्ती नानाप्रकारके संकल्प विकल्परूपी शब्द करता है, तातें सोई उपाय कहो, जिसकर अहंकारका नाश होवै ।

सो अहंकार अकल्याणका मूल है, जैसे मेघ का करनेहारा शरत्काल है, तैसे वैराग्यका नाश करनेहारा अहंकार है, मोहादिक विकाररूप जो सर्प है, तिनको रहनेका अहंकाररूपी बिल है, अरु अहंकार कामी पुरुषकी नांई है, जैसे कामी पुरुष कामको भुगता है, अरु फूलकी माला गले में डारके प्रसन्न होता है, तैसे तृष्णारूपी तागेके साथ परोये हैं सो अहंकाररूपी कामी पुरुष गलेमें डारता है. अरु प्रसन्न होता है ।

हे मुनीश्वर ! आत्मारूपी सूर्य है तिसकाआवरण करनेहारा मेघरूपी अहंकार है,जब ज्ञानरूपी शरत्काल आवै, तब अहंकाररूपी मेघका नाश होजाना है,अरु तृष्णारूपी तुषारका भी नाश होवै ।

हे मुनीश्वर ! यह निश्चयकरि मैंने देख्या है, जो यहां अहंकार है, तहां सब आपदा आय प्राप्त होती है, जैसे समुद्रमें सब नदी आयके प्राप्त होती हैं. तैसे

अहंकारमें सब आपदाकी प्राप्ति है, तातें सोई उपाय कहो, जिसकर अहंकार का नाश होवै।

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे अहंकारदुराचारवर्णनंनाम दशमः सर्गः १०

एकादश सर्गः ११

अथ चित्तदौरात्म्य वर्णनं।

श्रीराम उवाच–हे मुनीश्वर! यहजो मेरा चित्त है सो काम, क्रोध, लोभ, मोह, तृष्णादिक दुःखकर जर्जरीभाव होगया है, अरु महापुरुषके जो गुण, वैराग्य, विचार, धैर्य, संतोष, तिनकी ओर नहीं जाता, सर्वदा विषयकी गिरदमें उड़ता है, जैसे मोरका पंख पवनके लागे ठहरता नहीं, तैसे यह चित्त सर्वदा भटकत फिरता है, अरु इसको लाभ कछु प्राप्त नहीं होता जैसे श्वान द्वारद्वारपे भटकत फिरता है, तैसे यह चित्त पदार्थके पावने निमित्त भटकत फिरताहै, औप्राप्त कछु नहीं होताहै. अरुजोकुछ प्राप्तहोताहै, तिसकरि तृप्तनहीं होता, अंतर तृष्णारही जातीहै, जैसे पिटारेमें जलभरियें, तासों वह पूर्ण नहीं होता, क्योंजो छिद्रतें जलनिकस जाताहै, अरु पिटारा शून्य रहता है, तैसे चित्तको भोगपदार्थ प्राप्त होता है, तासों संतुष्ट नहीं होताहै सदा तृष्णाई रहत है।

हे मुनीश्वर ! यह चितरूपी महामोहका समुद्र है, तिसमें तृष्णारूपी तरंग उठतेई रहते हैं, सो कदाचित् स्थिर नहीं होता, जैसे समुद्रमें तीक्ष्ण वेगकर तरंग होता है, सो तटके वृक्षनको लगता है, वे तरु जलमें बहे जातेहैं, चित्तरूपी समुद्रमें विषय वहा जाता है, वासनरूपी तरंगके वेगसों मेरा जो अचल स्वभाव था, सो चलायमान होगया है, सो इस चित्तसों मैं महादीन हुआ हों. जैसे जालमें पर्या पक्षीदीन हो जाताहै, तैसे चित्तधीवर की वासनारूपी जालमेंबध्या हुआ मैं दीन होगया हों, जैसे मृग के समूहतें भूली मृगी अकेली खेदवान् होतीहै तैसेमैं आत्मपदतेंभूल्या हुआ चित्त में खेदवान हुवा हों ।

हे मुनीश्वर ! यह चित्त सदा क्षोभवान रहता है, कदाचित् स्थिर नहीं होता, जैसे क्षीरसमुद्र मंदराचल-करके क्षोभवान् हुआ था, तैसे यह चित्त संकल्प विकल्प कर खेद पावत है, जैसे पिंजरे में आया सिंह पिंजरे में फिरता है, तैसे वासनामें आया चित्त स्थिर नहीं होता ।

हे मुनीश्वर ! इस चित्तनें मेरेको दूरतें दूर डार्याहै जैसे भारी पवनसों सूका तृण दूरतें दूर जाय परताहै तैसे चित्तरूपी पवननें मुझको आत्मानंदतें दूर डार्या है, जैसे सूके तृणको अग्नि जरावती है, तैसे मोकों चित्त जारता है, जैसे अग्नितें धूम निकसता है,तैसे चित्तरूपी अग्नितें तृष्णारूपी धूम निकसता है. ति-

सकर मैं परमदुःख पावता हौं, यह चित्त हंस नहीं बनता है, जैसे राजहंस दूध अरु जल मिलेको भिन्न भिन्न करता है; तिसकी नांई मैं अनात्मासाथ अज्ञान करके एकसा हो गया हौं, तिसको भिन्न नहीं करी शकता हौं, जब आत्मपद पावने का यत्न करता हौं, तब अज्ञान प्राप्त करने नहीं देता, जैसे नदीका प्रवाह समुद्र में जाता है, तिसको पहार सूधे चलने नहीं देता है, अरु समुद्र की ओर जाने नहीं देता है, तैसे मुझको चित्त आत्माकी ओरतें रोकता है, सो परमशत्रु है, हे मनीश्वर! तातें सोई उपाय कहौ, तिसकर चित्तरूपी शत्रुका नाश होवै।

यह तृष्णा मेरा भोजन करती रहती है, जैसे मृतक शरीर को श्वान अरु श्वानन्नी भोजन करते हैं तैसे आत्माके ज्ञान विना मैं मृतकसमान हौं. जैसे बालक अपनी परछाही वैताल मानकर भयको पावता है, सो जब विचार करके समर्थ होता है, तब बैतालका भय पावता नहीं, तैसे चित्तरूपी बैतालनें मुझको स्पर्श किया है, तिस कर मैं भय को पावता हौं, तातें तुम सोई उपाय कहौ, जिसतें चित्तरूपी बैताल नष्ट होय जावै।

हे मुनीश्वर! अज्ञान करके मिथ्या बैताल चित्त में दृढ होय रह्या है, तिसके नाश करने को मैं समर्थ नहीं हो शकता हौं, अग्नि में बैठना सो भी मैं सु-

गम जानता हों,औ चलके बड़े पर्वतके उपर जाना सो भी मैं सुगम मानता हौं, अरु बडे वज्रका चूर्ण करना यहभीमैं सुगम मानता हों,परंतु चित्तका जीतना महाकठिन है, ऐसा मैं जानता हों, चित्त सदाई चलायमान स्वभाववाला है, जैसे स्तंभके साथ बांध्या हुवा बानर कदाचि न स्थिर होय नहीं बैठता, तैसे चित्त बासनाके मारे स्थिर कदाचित्नहीं होता है, हे मुनीश्वर। बडा समुद्र का पान कर जाना सुगम है, औ सुमेरु का उल्लंघन करना सोभी सुगम है, परन्तु चित्तको जीतना महाकठिन है, जो सदा चलरूप है, जैसे समुद्र अपना द्रवस्वभावको कदाचित नहीं त्याग करता, अरु महाद्रवीभूत रहता है, तिसकर नानाप्रकारके तरंग होते हैं, तैसे चित्तभी चंचल स्वभावको कबी न त्यागता है, नानाप्रकारकी वासना उपजती रहती है, अरु बालक की नई चंचल है, सदा विषय की ओर धांवता है, कहुं पदार्थकी प्राप्ति होती है, परंतु अंतरतें सदा चांचल रहता है, जैसे सूर्यके उदय हुए दिन होता है,अरु अस्त हुएतें नाश पावना है। तैसे चित्तके उदयहुए त्रिलोकी की उत्पत्ति है,अरु चितके लीन हुएतेंलीन हो जाती है।

हे मुनीश्वर। काउ समुद्रमें जल गंभीर है, तिसमें बडे सर्प रहते हैं, सो सब काऊ समुद्र में प्रवेश करे

तब वह सर्प उनको काटतेहैं, तिनको विष चढ जाता है, तिसकर बडा दुःख पावते हैं; सो दृष्टांत सुनियें, चित्तरूपी समुद्र है, अरु वासनारूपी जल है, तिसमें छलरूपी सर्प है, जब जीव उनके निकट जाताहै, तब भोगरूपी सर्प उनको काटते हैं, औ तृष्णारूपी विख पसरता है, तिसकर मरते हैं ।

हे मुनीश्वर। जो भोगको सुखरूप जानकर चित्त दौरता है, सो भोग दुःखरूप है, जैसे तृणसौं खाई आच्छादित होय जातीहै, तिसको देखकर मूर्ख मृग खानेको दौरता है, तब खाईमें गिर परता है, दुःख पावता है, तैसे चित्तरूपी मृग भोगका सुख जानकर भोगनेको लगता है, तब तृष्णारूपी खाई में गिर पडता है, अरु जन्मांतर दुःखको भुगता है ।

हे मुनीश्वर! यह चित्त कबहु बडा गंभीर होबैठता जब भोगको देखता है, तब तिनकी ओर चीलकी नाई लग परता है, जैसे चील पच्छी आकाश में चढ फिरताहै, सो जब पृथ्वीपर मांसको देखताहै, तब तहां तें आय पृथ्वीपर बैठता है, अरु मांसको लेता है, तैसे यह चित तबलग उदार है, जबलग भोगको न देखता है, जब विषय देखै तब आसक्ति पाय विषय में गिर जाता है, अरु यह चित वासनारूपी शय्यामें सोय रहता है, अरु आत्मपदकी ओर जागता नहीं, इस चित्तकी जालमें मै पकरायाहौं, सो कैसी जाल है,

तामें वासनारूपी सूत्र है, अरु संसारकी सत्यतारूपी ग्रंथी है, अरु भोगरूपी तिसमें चूनहै, इसको देखके मैं फस्याहौं, कबहु पातालमें, कबहु आकाश में. वासनारूपी जेवरीकर घटीयंत्रकी नांई बंध्याहौं, तातें हे मुनीश्वर। तुम सोई उपाय कहौ तिसकर चित्तरूपी शत्रुको जीतों।

अब मुझको किसी भोगकी इच्छा नहीं, अरु जगतकी लक्ष्मी मुझको विरस भासती है, जैसे चंद्रमा बादरकी इच्छा नहीं करता अरु चतुर्मासेमेंआच्छादित होय जाता है तैसे मैंभी भोगकी इच्छा नहीं करता,तौ भी भोग मेरे सन्मुख जाते हैं तातें जगतकी लक्ष्मीको मैं नहीं चाहता, अरु मेरा चित्त है सो परम शत्रु है ।

हे मुनीश्वर! महापुरुष जो जीतनेका यत्न करते हैं सो जब चित्तको जीतें, तब परमपदको पावें,तातें मुझको सोई उपाय कहौ,जिसकर मनको जीतौं,सबदुःखइसके आश्रयतें रहते हैं, जैसे पर्वत पर बन है, सो पर्वतके आश्रयतें रहता है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे चित्तदौरात्म्य वर्णन नाम एकादशः सर्गः ११

द्वादशः सर्गः १२

अथ तृष्णागारुडी वर्णनं.

श्रीराम उवाच—हे ब्रह्मन्! चेतनरूपी आकाश में जो तृष्णारूपी रात्रि आई है, तामें काम, क्रोध, लोभ मोहादिक घुवड विचरते हैं, जब ज्ञानरूप सूर्य उदय होवै, तब मोहादिक उलूक भी नष्ट होजाते हैं तबसूर्यका उदय होताहै,तबबरफ उष्ण होयपिगलजाता है,तैसे संतोषरूपीरस कोतृष्णारूपीउष्णता सुकावतीहै, बहुरितृष्णा कैसीहै,जैसे शून्य बनमें पिशाचिनी अपने परिवार सहित फिरत रहती है, अरु प्रसन्न होती है, सो बन अरु पिशाच कैसा है, आत्मपदतें शून्य जो चित्तसो भयानक शून्य वन है, तिसमें तृष्णारूपी पिशाचिनी है, अरु मोहादिक उसका परिवार है, उनको साथ लेकर फिरती है।

हे मुनीश्वर! चित्तरूपी पर्वत है तिसके आश्रय तैं तृष्णारूपी नदीका प्रवाह चलता है, अरु नाना प्रकारके संकल्परूपी तरंगको पसारते हैं, जैसे मेघको देखके मोरप्रसन्न होताहै,तातेपरम दुःखकामूल तृष्णा है, जब मैं किसी संतोषादि गुणका आश्रय करता हौं तब तृष्णा तिसको नाश कर देती है, जैसे सुंदर सा-

रंगीको चूहा तोरि डारता है, तैसे संतोषादि गुणको तृष्णा नाश करती है।

हे मनीश्वर। सबतें उत्कृष्ट पदमें बिराजनेका मैं यत्न करता हौं, तब तृष्णा बिराजने नहीं देती जैसे जालमें फस्या हुआ पक्षी आकाश में उडनेका यत्न करता है परंतु उड़ नहीं शकता है, तैसे मैं अनात्म पदतें आत्मपदको प्राप्त नहीं होसकताः स्त्री, पुत्र, अरु कुटुंब, तिसनें जाल बिछाई है, तामें फस्या हो सो निकल नहीं सकता, सो आशारूपी फांसी में बंध्या हुआ कबहु ऊर्ध्व जाता हौं, कबहु अधःपातित होता हौं, सो घटीयंत्रकी नांई मेरी गति है, जैसे इंद्रका धनुष्य मलिन मेघमें होता है, सो बड़ा और बहोत रंग सों भरया होता है, परंतु मध्यतें शून्य है, तैसे तृष्णा मलिन अंतः करण में होती है, सो बडी है, अरु गुणरूपी धागेतें रहित है, उपर तें देखने मात्र सुन्दर है, परन्तु इसमें कार्य सिद्ध कछु नहीं होता।

हे मुनीश्वर। तृष्णारूपी मेघ है, तिसतें दुःखरूपी बुंद निकसतें हैं अरु तृष्णारूपी काली नागिन है, उसका स्पर्श तो कोमल है, परंतु विषकर पूर्ण है, तिसके डसतें मृतक होजाता है, अरु तृष्णारूपी बादर है सो आत्मरूपी सूर्यके आगे आवरण करता है, जब ज्ञानरूपी पवन निकसे तब तृष्णारूपी बादरका नाश

होवै, अरु आत्मपदका साक्षात्कार होवै अरु ज्ञानरूपी कमलको संकोच करने हारी तृष्णारूपी निशा है,अरु तृष्णारूपी महाभयानक काली रात्रि है, जिसकर बड़े धैर्यवान् भी भयभीत होते हैं अरु नयनवालेको भी अंधकर डारती है. जब यह चाहती है, तब वैराग्य अरु अभ्यासरूपी नेत्रको अंध कर डारती है, अर्थ यह जो सत्य असत्य को विचारने नहीं देती।

हे मुनीश्वर। तृष्णारूपी डाकिनी है, सो संतोषादिक पुत्रको मार डारती है, अरु तृष्णारूपी कंदरा है, तिसमें मोहरूपी उन्मत्त हस्ती गरजते हैं, अरु तृष्णारूपी समुद्र है, तिसमें आपदारूपी नदी आय प्रवेश करती है तातें सोई उपाय मुझको कहो, जिसकर तृष्णारूपी दुःखतें छूटौं।

हे मुनीश्वर। अग्निसों भी ऐसा दुःख नहीं होता अरु खड्गके प्रहारकरभी ऐसा दुःख नहीं होता, अरु इन्द्रके वज्रकर ऐसा दुःख नहीं होता, जैसा दुःख तृष्णाकर होता है, सो तृष्णाके प्रहारसों घायल बड़े दुःखको पावताहै, अरु तृष्णारूपी दीपक पर्या जलता है, तिसमें संतोषादि पतिंगिये जर जाते हैं, जैसे जल में मच्छ रहती है, सो जलमें कंकरी रेती आदि वैसेको देख मांस जानकर वह मुखमें लेती है, तातें उसका अर्थ सिद्ध कछु नहीं होता, तैसे तृष्णाभी जो कछु पदार्थ देखती है तिसके पास उड़ती है, अरु तृप्त किसी

करि नहीं होती, अरु तृष्णारूपी एक पक्षिणी है, सो कबहु कहुं उड़ जाती है, अरु स्थिर कबहु नहीं होती, तैसे तृष्णा भी किसी पदार्थ को, कबहु किसीको ग्रहण करती है, परंतु स्थिर कबहु नहीं होती, अरु तृष्णारूपी वानर है सो कबहु किसी वृक्षपर, कबहु किसी के उपर जाता है स्थिर कबहु नहीं होता है, जो पदार्थ नहीं प्राप्त होता, तिसके निमित्त यत्न करताहै तैसे तृष्णाहु नानाप्रकार के पदार्थका ग्रहण करती है, अरु भोगकर तृप्त कदाचित् नहीं होती, जैसे घृतकी आहुती कर अग्नि तृप्ति नहीं पावै तैसे जो पदार्थ प्राप्तियोग्य नहीं है, तिसके और भी त्रष्णा दौरती है; शांतिको नहीं पावती है।

हे मुनीश्वर! त्रष्णारूपी उन्मत्त नदी है, तिसमेंजो बहाया पुरुष ताको कहांका कहां ले जाती है, कबहु तो पहारकी बाजुमें ले जाय, कबहु दिशामें ले जाय परंतु इनको ले फिरती है. तैसे त्रष्णारूपी नदी है, सो मुझको ले फिरती है अरु त्रष्णारूपी जो नदी है, इसमें वासनारूपी अनेक तरंग उठते हैं कदाचित् मिटते नहीं है, अरु त्रष्णारूपी नटनीहै, अरु जगतरूपी अखाडा तिसनें लगाया है, तिसको शिर ऊंचा कर देखती है, अरु मूर्ख बडे प्रसंन होते हैं, जैसे सूर्यके उदय हुए सूर्यमुखी कमल खिलके ऊंचा आता है, तैसे मूर्ख तृष्णाको देखकर प्रसंन होते हैं, तृष्णारूपी वृद्धस्त्री है, जो पुरुष इसका त्याग करता है, तब

याके पाछे लगी फिरती है, कबहु इसका त्याग नहीं करती, अरु तृष्णारूपी डोरी है, तिससाथ जीवरूपी पशु बांधे हुए हैं, तिसकर भ्रमते फिरतेहैं,अरुतृष्णादुष्टनी है, जब शुभ गुणको देखै,तब तिनको मार डारतीहै, तिसके संयोगतें मैं दीन हो जाता हों, जैसे पपैया मेघको देखकर प्रसंन होता है,अरु बूंद ग्रहण करनेलगता है,औ मेघको जब पवन ले जाता है,तब पपैया दीनहो जाता है, तैसे तृष्णा शुभ गुणका नाश करती है,तब मैंदीन हो जाता हों।

हे मुनीश्वर! तृष्णानें मुझको दूरतें दूर डारया है, जैसे सूके त्रणकोपवन दूरतें दूर डारताहै तैसे त्रष्णारूपी पवननें मुझको दूरतें दूर डारया है, आत्मपदतें दूर पर्या हों, हे मुनीश्वर! जैसे भंवरा कमलके उपर जाता है, कबहु नीचे बैठता है, कबहु आसपास फिरता है, अरु स्थिर नहीं होता, तैसे तृष्णारूपी भंवरा संसाररूपी कमल के नीचे उपर फिरता है,कदाचित ठहरता नहीं है, जैसे मोतीका बांस होता है, तिसतें अनेक मोती निकसते हैं,तैसे तृष्णारूपी बांसतें जगतरूपी अनेक मोति निकसतेहैं,तिसकर लोभीका मनपूर्णनहीं होता, दुःखरूपी रत्नका तृष्णारूपीडब्बा है,तैसे अनेक दुःख रहते हैं, तातें सोइ उपाय कहो, जिसकर त्रष्णा निवृत्त होवै।

हे मुनीश्वर! यह वैराग्यसे निवृत्ति पाती है,और

किसी उपायकर निवृत्त नहीं होती है, जैसे अंधकार का प्रकाशकर नाश होता है, और किसी उपायकर नहीं होता, तैसे तृष्णाका नाश और उपायसों नहीं होता है, अरु तृष्णारूपी हलहै सो गुणरूपी पृथ्वीको खोद डारता है, अरु त्रष्णारूपी वल्ली है, सो गुणरूपी रसको पीती है, अरु त्रष्णारूपी धूर है, सो अंतःकरणरूपी जलमें उछल के मलिन करती है।

हे मुनीश्वर! नदी है सो वर्षाकालमें बढती है, फिर घट जाती है, तैसेजब इष्टभोगरूपी जल प्राप्त होता है, तब हर्षकर बढती है,जब भोगरूपी जल घट जाताहै,तब सूकके छीन होजातीहै, हे मुनीश्वर! इसत्रष्णा नें मुझकोदीन कियाहै,जैसे सूके त्रणकोपवन उडाता है तैसे मुझको उडातीहै,तातें सोइ तुम उपाय कहौजिस कर त्रष्णाका नाश होवे,अरुआत्मपदकी प्राप्ति होवै अरु दुःख नष्ट होवे अरु आनंद होवै।

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे तृष्णागारुडी वर्णनं नाम द्वादशः सर्गः १२

त्रयोदश सर्गः १३

अथ देहनैराश्य वर्णनं।

श्रीराम उवाच—हे मुनीश्वर! यहजो अमंगलरूप शरीर जगत में उत्पत्ति पाया है, सो बडा अभाग्य

रूप है, सदा विकारवान, मांसमज्जाकर पूर्ण है, सदा अपवित्र है, उस करके मैं कछु अर्थ सिद्ध होता नहीं देखता, तातें तिस विकाररूप शरीरकी इच्छा मैं नहीं रखता ।

यह शरीर न अज्ञ है, न तज्ज्ञ है अर्थ यह जो न जड है न चैतन्य है, जैसे अग्निके संयोगकर लोहा अग्निवत् होता है, सो जलता भी है, परंतु आप नहीं जलता, तैसे यह देह न जड है, न चैतन्य है, जड इस कारणतें नहीं, जो इसतें कार्य भी होता है, अरु चैतन्य इस कारणतें नहीं, जो इसको आपतें ज्ञान कछु नहीं होता, तातें मध्यम भावमें है; काहेतें जो चैतन्य आत्मा इसमें व्याप रहा है, सो लोह अग्नि की नाई जानत हों, अरु आपतें ता अपवित्र अस्थि, मांस, रुधिर, मूत्र, विष्ठाकरि पूर्ण, अरु विकारवान, ऐसा जो देह है सो दुःखका स्थान है, अरु इष्टके पायेतें हर्षवान होताहै अरु अनिष्ट के पायेतें शोकवान्होता है, तातें ऐसे शरीरकी मुझको इच्छा नहीं, यह अज्ञान कर उपजता है ।

हे मुनीश्वर ! ऐसे अमंगलरूपी शरीरमें जो अहं-पना स्फुरताहै, सो दुःखका कारण है, यह संसारमेंस्थित होकर नानाप्रकारके शब्दकरताहै, जैसे कोठडीमेंबिल्ला बैठाहुआ नानाप्रकारका शब्द करता है, जैसे अहंकार रूपी बिलाडा देहमें रहा हुआ अहं अहं, करता है, चुप

कदाचित नहीं रहताहै, हे मुनीश्वर!जो किसीके निमित्त शब्द होवै सो सुंदर है, अन्यथा शब्द व्यर्थहै जैसे जयके निमित्त ढोलका शब्द सुंदर होताहै,तैसे अहंकारके रहित जो पद है, सो शोभनीक है और सब व्यर्थ है।

अरु शरीररूपी नौका भोगरूपी रेतीमें परीहै इसको पार होना कठीन है जब वैराग्यरूप जल बढे अरुप्रवाह होवै अरु अभ्यासरूपी पतवारीका बल होवै तब संसारके पाररूपी किनारेगै पहुंचे अरु शरीररूपी बेडाहै अरु संसाररूपी समुद्र औ तृष्णारूपी जलमें परयाहै अरु बडा प्रवाह है अरु भोगरूपी तिसमें मगर है सो शरीररूपी बेडाकोपार लगने नहींदेता जब शरीररूपी बेडाके साथ वैराग्यरूपी वायुलगै अरु अभ्यासरूपी पतवारीका बल लगै तब शरीररूपी बेडा पारकोपावै हेमुनीश्वर!जिन पुरुषने ऐसे बेडेको उपायकर आपको संसारसमुद्रतें पार किया है सो सुखी भये हैं अर जिननें नहीं किया, सो परम आपदाकोप्राप्त होते हैं,सो इस बेडेकर उलटे डुबेइगे, जैसे बेडामें छिद्रहोवै, औ वामेतें जल प्रवेश कर आवै, तौवह डूब जाताहै,अरु तिसमें जो मत्स्यहैं, सो खाई जाते हैं, सोइहां शरीररूपी बेडेका तृष्णारूपी छिद्र है।तिसकरके इहांसंसार समुद्रमें डुब जाताहै अरु भोगरूपीमगर इसको खाते हैं अरुयह आश्चर्यहै जो बेडा अपने निकटनहीं भास

ताहै, अरु मनुष्य सो मूर्खताकरके आपको बेडा मानता है, अरु तृष्णारूपी छिद्र करके दुःख पावत है।

अरु शरीररूपी वृक्ष है, तामें भुजारूपी शाखा हैं, अरु अंगुरी इसके पत्र हैं, अरु जंघा इसके स्तंभहैं, अरु मांसरूपी अंतरका भोगहै,अरुवासना इसकी जड़ है,अरु सुख दुःख इसके फूलहैं,अरु त्रष्णारूपी घुनाहै सो शरीररूपी वृक्षको खात रहताहै, जब इसको श्वेत फूल लगे है तब नाशका समय पाता है, कारण जो मृत्यु के निकटवर्ती होता है,बहुरि शरीररूपी वृक्षकैसा है।जो भुजारूपी इसके टासहैं,अरु हस्तपाद इसके पत्र हैं,अरु गिर्टे इसका गुच्छा है अरु दांत फूल हैं, जंघा स्तंभ हैं,अरु कर्मजलकर बढ़ जाताहै,जैसे वृक्षतें जल निकसताहै,सो चिकटा है,तैसे जल शरीरके द्वारा निकसता रहता हैं,अरु त्रष्णारूपी विषतें पूर्ण सर्पिणी रहती है, अरुजो कामना के लिये इस वृक्षका आश्रय लेताहै,तब त्रष्णारूपी सर्पिणी तिसको डसती हैं,तिस विषसों वह मरि जाता हैं,हे मुनीश्वर ! ऐसाजोअमंगलरूपी शरीरवृक्ष है, तिसकी इच्छा मुझको नहीं है, यह परम दुःखका कारण है।

जबलग यह पुरुष अपने परिवारमें बंध्या हुआहैं, तबलग मुक्ति नहीं होती जब परिवारका त्याग करै तब मुक्ति होवै देह इंद्रिय प्राण मन बुद्धि इसका परिवार है इनमें जो अहंभाव है वाका त्याग करै तब

मुक्ति होवै, अन्यथा मुक्ति नहीं होती।

हे मुनीश्वर! जो श्रेष्ठ पुरुष हैं,सो पवित्रई स्थानमें रहते हैं, अपवित्रमें नहीं रहते, सो अपवित्र स्थान यह देह है, इसमें रहनेवाला भी अपवित्र है, अरु अस्थिरूपी इस घरमें लडकेहैं, वामे रुधिर, मूत्र, विष्ठाका कीच लगाया, अरु मांसकी कहगील करी है, अरु अहंकाररूपी इसमें श्वपच रहताहै,अरुतृष्णारूपीश्वपचनी इसकी स्त्री है, अरु काम,क्रोध, मोह लोभ इसके बेटे हैं, आंत्र अरु विष्ठादिक करि पूर्ण भऱ्या हुआ है ऐसा जोअपवित्र स्थान,अमंगलरूप जो शरीर,तिनका मैं अंगीकार नहीं करता,यह शरीर रहो चाहै मतरहो इसके साथ मेरे साथ अब कछु प्रयोजन नहीं।

हे मुनीश्वर! एक बडा घर है,तिसमें बडे पशु रहते हैं सो धूरको उडावतेहैं, उस गृहमें कोउ जाताहै, तब सिंह मारने लगताहै,अरु धूड़भी उसके ऊपर गिरती है, सो शरीररूपी बड़ा गृहहै, तिसमें इंद्रियरूपी पशु हैं जब इस गृहमें बैठता है, तब बडी आपदा कोप्राप्त होताहै, तात्पर्य यह, जो इसमें अहंभाव करताहै, तब इंद्रियरूपी पशुसो विषयरूप सिंहसों मारतेहैं, अरु तृष्णारूपी धूड़ उसको मलीन करती हैं हे मुनीश्वर! ऐसे शरीरका मैं अंगीकार नहीं करता।

जिसमें सदा कलह पड़ेई रहतेहैं, तिसमें ज्ञानरूपी संपदा प्रवेश नहीं होती, ऐसा जो शरीररूपी गृहहै,

तिसमें तृष्णारूपी चंडी स्त्री रहती है सो इंद्रियरूपी द्वारसों देखती रहती है,सोसदा कल्पना करत रहती है, तिसकर शमदमादिरूप संपदाका प्रवेश नहीं होता तिस घरमें एक शय्या है,जबउसके उपर विश्रामकरता है,तब कछुक सुख पाताहै,परंतु तृष्णाका जो परिवार हैसो विश्राम करने नहीं देता, सो सुषुप्तिरूपी शय्या है, जब उसमें विश्राम करताहै, तब कामक्रोधादिक रुदन करते हैं अरु ए चंडी स्त्रीका जो परिवार काम क्रोध मोह इच्छा है सो उठाइ देते हैं, विश्राम करने नहीं देते। हे मुनीश्वर ! ऐसा दुःखका मूल जो शरीररूपी गृह है तिसकी इच्छा मैंने त्याग दीनी है यह परम दुःख देनहारा है इसकी इच्छा मुझको नहीं ।

हे मुनीश्वर ! शरीररूपी वृक्ष है, तिसमें तृष्णारूपी कौवानी आय स्थित भईहै,सो जैसेकौवानी नीचपदार्थके पास उडती है,तैसे तृष्णारूपी कौवानी भोगरूपी मलिन पदार्थके पास उडतीहै, बहुरि तृष्णा बंदरीकी नाईं शरीररूपी वृक्षको हिलाती है, वृक्षको स्थिर होने देती नहीं, अरुजैसे उन्मत्त हस्ती कीचमें फस जाताहै अरु निकस नहीं शकता, अरु खेदवान् होताहै, तैसे अज्ञानरूपी मदकर उन्मत्त हुआजीव शरीररूपी कीचमें फस्या है, सो निकस नहीं शकता है, पन्याई दुःख पावता है, ऐसे दुःख पावनेवाला शरीर है, तिसका मैं अंगीकार नहीं करता ।

हे मुनीश्वर! यह शरीर अस्थि,मांस,रुधिरकरिपूर्ण है, सो अपवित्र है, जैसे हस्तिके कर्ण सदाई हलतेहैं, तैसे इसको मृत्यु परा हिलाता है, कछु कालका विलंब है, परंतु मृत्यु इसका ग्रास कर लेवैगा, तातें मैं इस शरीरका अंगीकार नहीं करता हौं।

यह शरीर कृतघ्न है,भोग भुगतता है,बडे ऐश्वर्यको प्राप्त करता है, परंतु मृत्यु इनकी सखापन नहीं करता है, जब जीव उसको छांड़कर परलोक जाता है, तब अकेलाजाता है,औ शरीरको छोड़ देताहै,जीव इसके सुखनिमित्त अनेक यत्न करता है, परन्तु संगमें सदा नहीं रहता,ऐसा जोकृतघ्न शरीर है,इसका मैंने मनसों त्याग किया है, सो यह दुख देनहारा है।

हे मुनीश्वर। औरआश्चर्य देखौ,जो याहिका भोग करताहै, तिसकेसाथ जलता नहीं जैसे धूरिकर मार्ग भासनेतें रही जाताहै,तैसे यह जीव जब चलने लगता है, तब शरीरसाथ क्षोभवान् होता अरु वासनारूप धूर संयुक्त चलता है, परंतु दिखता नहीं जो कहां गया,जब परलोक जाता है, तब बड़ा कष्ट होताहै, काहेतें जो शरीरके साथ स्पर्श किया है।

हेमुनीश्वर। यह शरीर क्षणभंग है,जैसे जलकी बूंद पत्रके ऊपर गिरती है, सो क्षणमात्र रहती है, तैसे शरीर भी क्षणभंग है ऐसे शरीरमें आस्था करनीसो मूर्खता है, अरु ऐसे शरीरके उपर उपकार करनाभी

दुःखके निमित्त हैं, सुखकछु नहीं है, औ जो धनाढ्य है,सो शरीरसों बड़े भोग भुगतेहैं औ निर्धन थोड़े भोग भुगते हैं परंतुजरावस्था अरु मृत्यु दोनोंको होते हैं इसमें विशेषता कछु नहीं, शरीरका उपकार करना औभोग भुगना,सो तृष्णाकरके उलटा दुःखका कारण है, जैसे कोउ नागिनी घरमें रखके इसको दूध प्यावै तोउआखर उसकोकाटके मारैगी,तैसे जीवनेंत्रष्णारूप नागनीसाथ सखाई करीहै सो मरैगा,क्यों जो नाश वंतहै, इसके निमित्त जो भोग भुगतनेका यत्न करना सो मूर्खता है,जैसे पवनका वेग आता है अरु जाता है तैसे यह शरीर नाशवन्त है इनसों प्रीति करनी सो दुःखका कारण है सब जीव इसकी आस्थामेंबांधे हुएहैं इसीका त्याग कोउ विरलानेंई कियाहै जैसे कोउ विरला मृग होताहैसो मरुस्थलके जलकीआस्था त्यागता है और सब परे भ्रमते हैं।

हे मुनीश्वर। बिजलीका अरु दीपकका प्रकाश भी आता जाता दिखता है,परन्तु इस शरीरका आदिअन्त नहीं दिखताहै, जो कहातें आता है अरु कहां जाता है जैसे समुद्रमें बुद्बुद उपजतेहैं, अरु मिट जाते हैं, तिनकी आस्था करनेतें कछु लाभ नहीं, तैसे इस शरीरकी आस्था करनीयोग्य नहीं,यह अत्यन्त नाशरूपहै स्थिर कदाचित् नहीं होताहै, जैसे बिजुरी स्थिर नहीं होती तैसे शरीर भी स्थिर नहीं रहता, इसकी मैं

आस्था नहीं करता, इसका अभिमान मैंने त्याग्याहै; जैसे कोउ सूके तृणको त्याग देता है, तैसे मैंने अहं-ममता त्यागी है।

हे मुनीश्वर! ऐसे शरीरको पुष्ट करना, सो दुःखका निमित्तहै. यह शरीर किसी अर्थ आवने योग्य नहीं, जलावने योग्यहै, जैसे लकडी जलाए बिना औरकाममें नहीं आतीहै; तैसे यह शरीर भी जड अरु गुंगा जलावनेके अर्थ है, हे मुनीश्वर! जिन पुरुषोंने काष्ठरूपी शरीरको ज्ञानाग्निकर जलायाहै तिनका परमअर्थ सिद्धभया है अरु जिननें नहीं जलाया सो परम दुःख पाता है।

हे मुनीश्वर। न मैं शरीर हौं, न मेरा शरीर है, न इसका मैंहौं, न यह मेरा है, अब मुझको कामना कोउ नहीं है, मैं निराशी पुरुष हौं, अरु शरीरसाथ मुझको प्रयोजन कछु नहीं है, तातें तुम सोई उपाय कहौ, जिस करमैं परमपदकी प्राप्ति पाऊं।

हेमुनीश्वर! जिसपुरुषनें शरीरका अभिमान त्याग्या है, सो परमानन्दरूप है, औ जिसको देहकाअभिमान है, सो परम दुःखी है, जेते कछु दुःखहैं, सो शरीर के संयोगकरि होते हैं, मान, अपमान, जरा मृत्यु दंभ भ्रांति, मोह, शोक, आदिक सर्वविकार देहके संयोगकर होतेहैं जिसको देहमें अभिमान है, तिसको धिक्कार है, औ सब आपदा भी तिसको प्राप्त होती है, जैसे समुद्रमें नदी आय प्रवेश करतीहै, तैसे देहाभिमान में

सर्व आपदाआय प्रवेश करती हैं,जिसको देहका अभि मान नहीं, सो पुरुषनमें उत्तम है, अरु वंदना करने योग्य है, ऐसेको मेरा नमस्कार है, अरु सर्व संपदा भी तिसको प्राप्त होती है, जैसे मानसरोवर में सब हंस आय रहते हैं, तैसे जहां देहाभिमान नहीं रहा, तहां सर्व संपदा आय रहती है ।

हे मुनीश्वर ! जैसे अपनी छायामें बालक वैताल कल्पता है, अरु तिसकर भय पाता है, जब इसको विचारकी प्राप्ति होती है, तब वैताल का अभाव हो जाता है, तैसे अज्ञानकर मुझको अहंकाररूपी पिशाचनें शरीरमें दृढ आस्था बताई है, तातें सोई उपाय कहो ! जिसकर अहंकाररूपी पिशाचका नाश होवै, अरु आस्थारूपी फांसी टूटै ।

हे मुनीश्वर ! प्रथमजो मुझको अज्ञानकर संयोग था, सो अहंकाररूपी पिशाचका था, तिसतें अनंतर शरीर में आस्था उपजीहै, जैसे बीजतें प्रथम अंकुर होता है, फिर अंकुरतें वृक्ष होता है, तैसे अहंकार तें शरीर की आस्था होती है । हे मुनीश्वर ! इस अहंकाररूपी पिशाचनें सब जीवनको दीन किये हैं, जैसे बालकको छाया में बैताल भासता है, अरु दीनताको प्राप्त होता है, तैसे अहंकाररूपी पिशाचनें मुझको दीन कियाहै, सो अहंकाररूपी पिशाच अविचारतें सिद्धहै,अरु विचार कियेतें अभावको प्राप्त होताहै,जैसे प्रकाशकर अंधकार नाशहो

जाता है तैसे विचार किये तें अहंकार नाश हो जाता है,

हे मुनीश्वर ! जो शरीरमें आस्था रखी है, सो शरीर जलके प्रवाहकी नांई स्थिर नहीं होता, ऐसा चल है। जैसे बिजुरीका चमका स्थिर नहीं होता अरु गंधर्व नगरकी आस्था व्यर्थहै तैसे शरीरकी आस्था करनी व्यर्थहै, हे मुनीश्वर ! ऐसे शरीरकी आस्था करके अहंकार करते हैं। अरु जगतके पदार्थ निमित्त यत्न करतेहैं, सो महा मूर्ख हैं, जैसे स्वप्न मिथ्या है, तैसे यह जगत मिथ्या है; तिसकोसत्य जानकरजो इसका यत्न करताहै, सोअपने बंधनके निमित्त करता है, जैसे घुरान गुफा बनाती है, सो अपने बँधनके निमित्तहै अरु पतंग दीपककी इच्छा करता है, सो अपने नाशके निमित्त है, तैसे अज्ञानी जो अपने देहका अभिमान कर भोगकी इच्छा करता है, सो अपने नाश निमित्त है।

हे मुनीश्वर ! मैं तो इस शरीरका अंगीकार नहीं करता, काहेतें इस शरीर का अभिमान परम दुःख देन-हारा है, जिसको देह अभिमान नहीं रहा, तिसको भोगकी इच्छा भी न रहैगी, तातें मैं निराश हौं, अरु परम पदकी इच्छा है, जिसके पायेतें बहुरि संसार समुद्र की प्राप्ति न होवै।

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे देहनैराश्य वर्णननाम त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

चतुर्दशः सर्गः १४

अथ बाल्यावस्थावर्णनं।

राम उवाच—हे मुनीश्वर ! यह संसार समुद्रमें जो जन्म पाया है, तामें बालक अवस्था इसको प्राप्त भई है, सो भी परम दुःखका मूल है, तिसमें परम दीन हो जाता है, अरु जेते अवगुण इसमें आय प्रवेश करते हैं, सो कहत हौं, अशक्तता, मूर्खता, इच्छा, चपलता, दीनता अरु दुःख, संताप, एते विकार इसको आय प्राप्त होते हैं, यह बाल्यावस्था महाविकारवानहै, अरु बालक पदार्थकी ओर धावता है, एक वस्तुका ग्रहण कर दूसरीको चाहता है, स्थिर नहीं रहता है, फिर औरमें लग जाता है, जैसे वानर ठहरके नहीं बैठता, अरु जो काहू की उपर क्रोध करता है, तब अंतरतें पच्या जलताहै, अरु बड़ी २ इच्छा करता है, तिसकी प्राप्ति नहीं होती, सदा तृष्णामें रहता है, अरु क्षणमें भयभीत हो जाताहै, शांतिको प्राप्त नहीं होता, फिर महादीन हो जाता है, जैसे कदली बनकाहस्ती सांकलसों बाध्या हुआ दीनहो जाता है, तैसे यह चैतन्य पुरुष बालक अवस्थाकर दीन हो जाता है, जो कछु इच्छा करता है, सो विचार विना है, तिसकर दुःख पाता है। अरु मूढ गूंग अवस्था है तिस-

कर कछु सिद्धि नहीं होती,काउ पदार्थकी प्राप्ति होती है, तिसमें क्षणमात्र सुखी रहताहै,बहुरि तपने लगता है,जैसे तपती पृथ्वीपर जल डारियें तब एक क्षण शीतल होती है, फिर उसी प्रकार सों तपती है, तैसे उह भी तपता है, जैसे रात्री के अंतमें सूर्यका उदय होता है, तिसकर उलूकादि कष्टवान् होतेहैं,वैसे इस जीवको स्वरूपके अज्ञानकर बाल्यावस्था मेंकष्ट होताहै

हे मुनीश्वर। जो बालक अवस्थाकी संगति करता है, सोभी मूर्खहै, काहेतें जो यह विवेकरहित अवस्था है,अरु सदा अपवित्रहै:औसदा पदार्थकी ओरधांवता है, ऐसी मूढ अरु दीन अवस्थाकी मुझको इच्छा नहीं जिस पदार्थको देखताहै तिसकी ओर धांवताहै, अरु क्षणक्षण अपमानको पावता है जैसे कूकर क्षणक्षण मंदारकी ओर धांवताहै, अरु अपमान पावताहै, तैसे बालक अपमानको प्राप्त होताहै, अरु बालकको सदा माता अरु पिताका भय रहता है, बांधवका सदा भय रहता है अरु पापतें बडे बालकका भी भय रहता है, अरु पशुपक्षीहुका भय रहता है, हे मुनीश्वर। ऐसी दुःखरूप अवस्थाकीमुझको इच्छानहीं,जैसे स्त्रीकेनयन चंचलहैं अरु नदीका प्रवाह चंचल है इसतें भी मन अरु बालक चंचल है, ऐसे जानता हौं, अरु सब चंचलता बालकतें कनिष्ठ है,बालक सबतें अचल है, जैसे

मन चंचल है, तैसा बालक भी चंचल है मनका रूप बालक है।

हे मुनीश्वर! जैसे वेश्याका चित्त एक पुरुषमें नहीं ठहरता, तैसे बालकका चित्त एक पदार्थमें नहीं ठहरता जो इस पदार्थकर मेरा नाश होवैगा, ऐसा विचारभी तिसको नहीं, अरु इसकर मेरा कल्याण होवैगा सोविचार भी नहीं ऐसेई परया चेष्टा करता है अरु सदा दीन रहता है अरु सुख दुःख इच्छा होंस करके तपायमान रहता है जैसे ज्येष्ठ आषाढ पृथ्वी तपायमान होती है तैसे बालक तपताई रहता है शांति कदाचित् नहीं पावता।

अरु जब विद्या पढने लगता है तब गुरुसों बड़ा भयभीत होताहै जैसे कोउ यमको देखके भय पावै, औ गरुड़को देखके जैसे सर्प भय पावै तैसे भयभीत हो जाताहै जब शरीरको कोउकष्ट आयप्राप्त होताहै तब बडे दुःखको प्राप्त होताहै परंतु दुःखके निवारणमें समर्थ नहीं होता अरु सहनको भी समर्थ नहीं अंतरतें परया जलताहै अरु मुखतें कछु बोल शकता नहीं जैसे वृक्ष कछु नहीं बोल शकता अरु जैसे अवर तिर्यक् योनी दुःख पावता है अरु कहि न शकतहै अरुदुःखका निवारण नहींकरि शकता, न संहारकर शकता, अंतरतें परया जलता है तैसे बालक गुंगमूढ हुआ दुःख पावता है हे मुनीश्वर! ऐसी जो बालककी

अवस्था, तिसकी जो स्तुति करता है, सो मूर्ख है ।

यह तो परम दुःखरूप अवस्था है, इसमें विवेक विचार कछु नहीं, एक खाने को पाता है, अरु रुदन करता है ऐसी अवगुणरूप अवस्था मुझको नहीं सुहाती है जैसे बिजुरी अरु जलके बुद्बुदे स्थिर नहीं रहते तैसे बालकहु स्थिर कदाचित् नहीं होता ।

हे मुनीश्वर! यह महामूर्ख अवस्था है, कबहु कहता है, हे पिता! मुझको बरफका टुकड़ा भुनी देहु, कबहु कहता है; मुझको चंद्रमा उतार देहु, ए सब मूर्खता के वचन हैं, तातें ऐसी मूर्खावस्थाको मैं अंगीकार नहीं करता, जैसे दुःखका अनुभव बालकको होता है, सो हमारे स्वपनेमें भी नहीं आया, तात्पर्य यह, जो बाल्यावस्थामें बड़ा दुःख है, यह बाल्यावस्था अवगुणका भूषण है, सो अवगुणकर शोभती है, ऐसी नीच अवस्थाको मैं अंगीकार नहीं करता, इसमें गुण कोउ भी नहीं है ।

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे बाल्यावस्था वर्णन नाम चतुर्दशः सर्गः १४

पंचदशः सर्गः १५

अथ युवागारुणी वर्णनं.

राम उवाच—हे मुनीश्वर! दुःखरूप बाल्यावस्था के अनंतरजो युवा अवस्था आतीहै, सोनीचेतें ऊंची चढती है, सो भी उत्तम गिनवेके निमित्त नहीं है, अधिक दुःख-दायक है, जब युवा अवस्था आती है, तब कामरूपी पिशाच आय लगता है, सो कामरूपी पिशाच युवा अवस्थारूपी गडेलेमें आय स्थित होताहै, चित्त फिराता है, अरु इच्छामें पसारता है, जैसे सूर्यके उदय हुवे सूर्यमुखी कमल खिली आताहै, अरु पंखुरीन को पसारता है, तैसे युवा अवस्थारूपी सूर्य उदय होता है, तब चित्तरूपी कमल इच्छारूपी पंखुरीन को पसारता है, तब फुरती है, अरु कामरूपी पिशाच इसको स्त्रीमें डार देता है, तहां पर्या दुःख पाताहै, जैसे काउको अग्निके कुंडमें डारी दिया होय अरु वह दुःख पावे तैसे कामके वश हुआ दुःखको पाता है।

हे मुनीश्वर! जो कछु विकार हैं, सो सब युवा अवस्थामें आयके प्राप्त हुए है, जैसे धनवानको देखके निर्धन सब धनकी आशा करते हैं, तैसे युवा अवस्थाको देखकर सब दोष आय इकट्ठे होते हैं, अरु जो भो:

गको सुखरूप जानकर भोग की इच्छा करता है, सोपरम दुःखका कारण है जैसे मद्यका घट भऱ्या हुआ देखने-मात्र सुंदर लगता है, परंतु जब उसका पान करै, तब उन्मत्त होय जाय, तिस उन्मत्तताकर दीन हो जाता है, अरु निरादरको पावता है, तैसे यह भोग देखनेमात्र सुंदर भासते हैं, परंतु जब इनको भुगतना है, तब तृष्णाकर उन्मत्त हो जाताहै, अरु पराधीन हो जाता है,

हे मुनीश्वर! यह काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार ये सब जो चोर हैं, सो युवारूपी रात्रको देखकर लुटते हैं, अरु आत्मज्ञानरूपी धनको चोर ले जाते हैं तिसकर यह दीन होता है, यह पुरुष आत्मानंदके वियोगकरदीन हुआहै, हे मुनीश्वर! ऐसी जो दुःख देनहारी युवा अवस्था, तिसका मैं अंगीकार नहीं करता, अरु शांति जो है, सो चित्त स्थित करने के लिये है,सो चित्त युवा अवस्थामें विषय की ओर धांवता है जैसे बाण लक्षकी ओरजाताहै, तब उसको विषयका संयोग होता हैं,सो विषयकी तृष्णा निवृत नहीं होती, अरु तृष्णाके मारे जन्मतें जन्मांतररूप दुःखको पावताहै, हे मुनीश्वर! ऐसी दुःखदायक युवाअवस्थाकी मुझको इच्छा नहींहै

हे मुनीश्वर! जेते कछु दुःख हैं, सो सब युवा अवस्थामें आयकर प्राप्त होतेहैं, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, चपलता इत्यादिक जे दुःख हैं,ते सब युवा

अवस्थामें स्थिर होते हैं, जैसे प्रलयकालमें सर्वरोग आय स्थिर होते हैं, तैसे युवावस्थामें सब उपद्रव आय मिलते हैं, और क्षणभंग हैं, जैसे बिजुरीका चमका होयके मिट जाता है, जैसे समुद्रमें तरंग होते हैं, अरु मिट जाते हैं, तैसे युवा अवस्था होयके मिट जाती है, तैसे स्वप्न में कोइ स्त्री विकारकर छल जाती है, तैसे अज्ञानकर युवा अवस्था छल जाती है।

हे मुनीश्वर! युवा अवस्था जीवकी परम शत्रु है, जो पुरुष इस शत्रुके शस्त्रतें बचे है, सो धन्य है? इसके शस्त्र काम, क्रोध हैं जो इसतें छुट्या है, सो बज्रके प्रहारकर भी छेद्या न जावेगा, जो इसकर बांध्या हुआ है, सो पशु है।

हे मुनीश्वर! युवा अवस्था देखने में तो सुंदर है, परंतु अंतरतें तृष्णा करके जर्जरितहै, जैसे बृक्ष देखनेमें तो सुंदर होय, अरु अंतरतें घुना लग्या हुआहै, तैसे युवावस्था जो भोगके निमित्त यत्न करती है सो भोग आपातरमणीय है, कारण यह जो जबलग इंद्रिय अरु विषयका संयोग है, तबलग अविचारित भला लगता है, अरु जब वियोग हुआ तब दुःख होताहै, तातें भोग करके मूर्ख प्रसन्न होते हैं, अरु उन्मत्त होते हैं, तिसको शांति नहीं होती, अरु अंतरतें सदा तृष्णा रहती है, स्त्री चित्तकी आसक्ति रहती है, जब इष्ट वनिताका वियोग होता है तब तिसके स्मरण करके जलता है,

जैसे वनका वृक्ष अग्नि करके जलताहै, तैसे युवावस्थामें इष्टवियोग करके जीव जलताहै, जैसे उन्मत्त हस्ती सांकल करके बंधन पाता है, तब स्थिर होता है, कहुं जाय नहीं शकता, तैसे कामरूपी हस्ती है, तिसको सांकलरूप युवा अवस्था बंधन करती है, अरु युवावस्थारूपी नदी है, तिसमें इच्छारूपी तरंग उठतेहैं, सो कदाचित् शांतिको नहीं पाता है।

हे मुनीश्वर। यह युवावस्था बड़ी दुष्ट है, कोउ बड़ा बुद्धिवान होवे, अरु सदा निर्मल प्रसन्न होवे, एते गुण करके संपन्न होवै, तिसकी बुद्धिकोभी युवावस्था मलिन कर डारती है; जैसे निर्मल जलकी बड़ी नदी होवे, अरु जब वर्षाकाल आवै, तब मलिन होय जावै, तैसे युवावस्था में बुद्धि मलिन होय जाती है।

हे मुनीश्वर! शरीररूपी वृक्षहै, तिसमें युवावस्थारूपी बल्ली प्रगट होतीहै, सो पुष्ट होती है, तब चित्त रूपी भंवरा आय बैठता है, सोतृष्णारूपी तिसकी सुगंध करके उन्मत्त होताहै, अरु सब विचार भूल जाताहै, जैसे जब प्रबल पवन चलताहै, तब सूके पत्रको उडाय ले जाताहै, अरु रहने नहीं देता, तैसे युवावस्था आवती है, तब वैराग्य, संतोषादिक गुणका अभाव करती है, अरु दुःखरूपी कमलका युवावस्थारूपी सूर्यहै, युवावस्थाके उदयतें सब दुःख प्रफुल्लित होय आते हैं तातें सब दुःखका मूल युवावस्था है, जैसे सूर्य के उदयतें सूर्य

मुखी कमल खिल आते हैं, तैसे चित्तरूपी कमल संसा-
ररूपी पंखुरी, अरु सत्यतारूपी सुगंधकर खिली आता
है, अरु तृष्णारूपी भौंरा तिसपर आय बैठता है, अरु
विषयकी सुगंध लेता है ।

हे मुनीश्वर ! संसाररूपी रात्री है, तिसमें युवाव-
स्थारूपी तारागण प्रकाशते हैं, कारण यह जो शरीर
युवावस्थाकरि सुशोभित होता है, अरु युवावस्था शरी-
रको जर्जरीभाव करके हो आतीहै, जैसे धानके छोटे
वृक्ष हरा तबलग रहै, जबलग उसको फूल नहीं आया।
जब फूल आता है, तब सूकनेको लगता है, अरु अन्नके
कण परिपक्व होतेहैं. तब अन्नके छोटेवृक्ष जर्जरीभावको
पावते हैं उसकी हरियावल नहीं रह शकती; तैसे जब-
लग युवानी नहीं आई, तबलग शरीर सुंदर कोमल
रहता है, जब युवानी आई तब शरीर कूर हो जाता है,
फेर परिपक्व होकर क्षीण हो जाता है अरु वृद्ध होता
है, तातें ।

हे मुनीश्वर ! ऐसी दुःखकी मूलरूप युवा अवस्था है,
तिसकी मुझको इच्छा नहीं, जैसेसमुद्र बड़े जलकर पूर्ण
है, तरंगको पसारता है, अरु उछलता है, तोउभी मर्या-
दाका त्याग नहीं करता, ईश्वरकी आज्ञा मर्यादामें रह-
नेकी है, अरु युवावस्थातौ ऐसीहै, जो शास्त्रकी मर्यादा
अरु लोककी मर्यादा मेटके चलतीहै, अरु तिनको आ-
पनाविचार नहीं रहता, जैसे अंधकारमें पदार्थका ज्ञा-

नहीं रहता, तैसे युवावस्थामें शुभ अशुभका ज्ञान नहीं होता,जिसको बिचार नहीं रहा, तिसको शांति कहांतें होवै?सदा व्याधि तापमें जल्या रहता है, जैसे जलबिना मत्स्यको शांति नहीं होती,तैसे बिचारबिना पुरुषसदा जलता रहता है।

जब युवावस्थारूप रात्रि आतीहै,तब काम पिशाच आयके गरजताहै, तिसकर इसको यही संकल्प उठते हैं, जो कोउ कामी पुरुष आवे,तिसकेसाथ मैंयहीचर्चा करौं,हे मित्र!यह कैसी सुंदरहै ! अरु कैसे उसके कटाक्ष हैं,सो किस प्रकार मोको प्राप्त होय। हे मुनीश्वर ! ऐसी इच्छासाथ वह सदा जलताई रहता है, जैसे मरुस्थलकी नदीको देख मृग दौरताहै,अरुजलकी अप्राप्तिकर जलताहै,तैसे कामी पुरुष विषयकीवासना करके जलताहै, अरु शांति नहीं पावता है।

हे मुनीश्वर ! मनुष्यजन्म उत्तम है, परन्तु जिनके अभाग्य हैं, तिनको विषयतें आत्मपदकी प्राप्तिनहीं होती,जैसे चिंतामणि कोईको प्राप्त होवे,सो तिसको निरादर करै औउनको जानै नहीं, औ डारि देवै,तैसे जोपुरुषमनुष्य शरीर पायकर आत्मपद नहींपाया,सो बडा अभागीहै,अरु मूर्खताकरके अपने जीवनको व्यर्थ खोय डारताहै, अरु युवा अवस्थामें परम दुःखकाक्षेत्र आपने निमित्त होताहै, अरु जेते विकार युवावस्थामें हैं, सो सब आयके इनको प्राप्त होते हैं,मान, मोह,

मद इत्यादि विकारकरके पुरुषार्थका नाश करता है, हे मुनीश्वर ! ऐसे युवावस्था बडे विकारको प्राप्तकरती है,जैसे नदी वायुसों अनेक तरंग पसारती है,तैसेयुवावस्था चित्तके अनेक कामको उठावती है। जैसेपक्षी पक्षकर बहुत उडता है, जैसे सिंह भुजाके बलसों पशुको मारने को दौरता है,तैसे चित्त युवावस्थाकर विक्षेपकी ओर धांवता है।

हे मुनीश्वर! समुद्रका तरना कठिन है, काहेतें जो तामें जल अगाध है, अरु विस्तारभी बडा है, अरु तिसमें मत्स्य, कच्छ, मगर बडे देहधारी रहते है,ऐसो दुस्तर समुद्र का तरना सो मैं सुगम मानता हौं, परंतु युवावस्थाका तरना महा कठिन है,कारण यहजो युवावस्थामें निर्दोष रहना कठिन है, ऐसी संकट वालीजो युवावस्था है, तिसमें चलायमान नहीं होते सो पुरुष धन्यहैं। अरु बंदना करने योग्यहैं, हे मुनीश्वर ! यह युवावस्था चित्तको मलिन कर डारती है,जैसेजलकी बावरी है तिसके निकट राख कांटे रहे होय, सोपवन चलनेतें सब आय बावरीमें गिरें तैसे पवनरूपी युवावस्था दोषरूपीधूर कांटनेको चित्तरूपी बावरीमें डारके मलिनकर देती है, ऐसे अवगुण करके पूर्ण जो युवावस्था तिसकी इच्छा मुझको नहीं है।

युवावस्था! मेरेपर यही कृपा करनी,जो तेरा दर्शन नहीं होवे, तेरा आवना मैं दुःखका कारण मानताहौं

जैसे पुत्रके मरनेका संकट पिता शोप नहीं शकता अरु सुखका निमित्त नहीं देखता, तैसा तेरा भावनामें सुखका निमित्तनहीं देखता, तातें मुझपर दया करनीजो अपना दर्शन न होवै ।

हे मुनीश्वर ! युवावस्थाका तरना महा कठिन है, जो कोउयौवन होवेसो नम्रतासंयुक्त होवे, औ शास्त्रकेगुण वैराग्य, विचार, संतोष, शांति इनकर सम्पन्न होवेसो दुर्लभहै, जैसे आकाशमें वन होना आश्चर्य है, तैसे युवावस्थामें वैराग्य, विचार, शांति, संतोष पावना ए बडा अश्चर्यहै, तातें मुझको सोइ उपाय कहौ जिसकर युवावस्थाके दुःखोंकी मुक्ति होय जाय, अरु आत्मपदकी प्राप्ति होय ।

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे युवागारुड़ी वर्णनं नाम पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

षोडशः सर्गः १६

अथ स्त्री दुराशा वर्णनं.

श्रीराम उवाच—हे मुनीश्वर! जिस काम विलासके निमित्त, स्त्रीकी वांछा करताहै, सो स्त्री अस्थि, मांस, रुधिर, मूत्र, विष्ठाकरि पूर्ण है, इसकी पूतरीबनी हुईहै, जैसे यंत्रकी बनी पूतरी होतीहै, सो तागेसोंकर अनेक चेष्टा करतीहै, तैसे यह अस्त्रिमांसादिककी पूत

रीमें कछु और नहीं है, जो विचार कर नहीं देखता, तिसको रमणीय दिखती है, जसे पर्वत के शिखरदूरतें सुंदर, अरु गंगामालासहित भासतेहैं, अरु निकटतें अभागेहैं, बडे पत्थरई दिखतें हैं, तैसे स्त्री, वस्त्र अरु भूषणनसोंकरि सुंदर भासती है, अरु जो अंगकोभिन्न भिन्न विचारकर देखौ तोसार कछु नहीं है,जैसे नागनीके अंग बहुत कोमल होते हैं, परंतु उसका स्पर्श करें तौकाटके मार डारतीहै,जैसेजो कोई स्त्रीको स्पर्श करतेहैं, तिनको नाशकर डारतीहै, जैसे विषकी बेली देखनेमात्र सुंदर लगतीहै,परंतु स्पर्श कियेतें मार डारती है,जैसे हस्तिको जंजीरकर बांधो तब जिस द्वारपेरहता है तहांइ स्थिर रहता है, तैसे अज्ञानीका जो चित्तरूपी हस्ती है,सो कामरूपी जंजीरकर बंधा हुआ स्त्रीरूपी एक स्थान में स्थिर रहता है, उहांतें कहुं जाय नहीं शकता,औ जब हस्तिको महावत अंकुशका प्रहार करते हैं, तब बंधनको तोरके निकस जाता है तैसे यह चित्तरूपी मूर्ख हस्ति है, सो महावतरूपी गुरुके उपदेशरूपी अंकुशका वारंवर प्रहार करता है तब सो भी निर्बंध होय जाता है, हे मुनीश्वर ! कामी पुरुष जो स्त्रीकी वांछा करता है,सो अपने नाशके निमित्त करता है,जैसे कदलीवनका हस्ती कागदकी हस्तिनी देखकर छल पाय के बंधनमें आता है,तातें परमदुःख पाता है, तैसे परमदुःखका मूल स्त्रीका संग है,हे मुनीश्वर ! जैसे

वनके दाहकी अग्नि सत्रनको जलावती है,तैसे स्त्रीरूपी अग्नि तिसमें अधिक है,काहेतें जो उस अग्निके स्पर्श कियेतें तप्त होते हैं,औ स्त्रीरूपी अग्नि तो स्मरणमात्रतें जलाती है,औ जो सुख रमणीय दिखाता है,सो आपातरमणीय है, जब स्त्रीके सुखका वियोग होता है, तब मुरदेकी नांई हो जाता है, तिस कालमें भी शव जैसा हो जाता है ।

हे मुनीश्वर ! यह तो अस्थि मांस रुधिरका पिंजरा है, सो अग्निमें भस्म हो जायगा, अथवा पशुपक्षीको खानेका आहार होयगा, जिनको देखकर पुरुष प्रसन्न होता है अरु प्राण आशाम में लीन हो जाते हैं,तातें इस स्त्रीकी इच्छा करनी सो मूर्खता है,जैसे अग्निकी ज्वालाके उपर श्यामता है, तैसे स्त्रीके शीश उपर श्याम केश हैं,जैसे अग्निके स्पर्श कियेतें जलता है, जैसे स्त्रीके स्पर्श कियेतें पुरुष जलता है,तातें जलना दोनोंमें तुल्य है, हे मुनीश्वर ! इसको नाश करन हारी स्त्रीरूपी अग्नि है,जो स्त्रीकी इच्छा करते हैं सो महामूर्ख अज्ञानी हैं,सो अपने नाशके निमित्तही इच्छा करते हैं, जैसे पतंग अपने नाशके निमित्त दीपककी इच्छा करते हैं, तैसे कामी पुरुष अपने नाशके निमित्त स्त्रीकी इच्छा करता है ।

हे मुनीश्वर ! स्त्रीरूपी विषकी बल्ली है अरु हस्त पावके अग्र तिसके पत्र हैं, अरु भुजा डारी हैं औ अस्थिरूप

गुच्छ हैं; नेत्रादिक इंद्रिय तिसके फूल हैं, अरु कामी पुरुषरूपी भौंरे आय बैठते हैं, अरु कामरूपी धीवरने स्त्रीरूपी जाल पसारी है, तिसपर कामी पुरुषरूपी पक्षी आय फसते हैं, कामरूपी धीवर तिनको फंसायकर परम दण्ड प्राप्त करता है, ऐसे दुःखके देनहारी स्त्रीकी जो वांछा करत है, सो महामूर्ख है।

हे मुनीश्वर! स्त्रीरूपी सर्पिणी है, जब तिसका फूत्कारा निकलता है, तब तिसके निकट कमलफूल सब जल जाते हैं, ऐसी स्त्रीरूपी सर्पिणी है, तिसका इच्छारूप जो जो फूत्कारा निकसता है तब वैराग्यरूपी कमल जर जाते हैं, अरु सब सर्पिणी डसती है, तब विष चढ़ता है औ स्त्रीरूपी सर्पिणीकी चितौनी करी तब अंतरमें आपही विष चढ़ जाता है।

हे मुनीश्वर! जैसे व्याधि छलकर पच्छीको फसावता है, तैसे कामी पुरुष पच्छीवत् सुंदर स्त्रीरूप जाल देखके फसता है, औ स्नेहरूपी तागेसों कामी पुरुष बंधनपाय खेंचाया चला जाता है, फिर तृष्णारूपी छुरीसों काम मार डारता है, हे मुनीश्वर! ऐसे दुःखके देनहारी स्त्रीकी मुझको इच्छा नहीं, अरु कामरूपी पारधी है, तिसने रागरूपी इंद्रियकी जाल बिछायी है, कामी पुरुषरूपी मृगको आसक्त करडारता है, अरु स्त्रीके स्नेहरूपी डोरी है तिसकर कामी पुरुषरूप बैल बंध्या है, अरु स्त्रीका मुखरूपी जो चंद्रमा है, तिसको देखकर कामी पुरुषरूपी

कमलनी खीली आतीहै;जैसे चंद्रमुखी कमल चंद्रमा को देखकर प्रसन्न होते हैं, औ सूर्यमुखी नहींहोते,तैसे यह कामीपुरुष भोगहूकर प्रसन्न होते हैं अरुज्ञानवान प्रसन्न नहीं होतेहैं, जैसे नकुल सर्पको विलमेंतेंनिकासके मारताहै,तैसे कामी पुरुषको स्त्री,आत्मानन्दमेंतें निकालके मार डारतीहै,जब स्त्रीके निकट जाताहै,तब उसको भस्म कर डारतीहै,जैसे सूके त्रण अरु घृतको अग्नि भस्म कर डारताहै, तैसे कामीपुरुषकोस्त्रीरूप नागनी भस्म कर डारती है।

हे मुनीश्वर ! स्त्री रूपीजो रात्रिहै,तिसका स्नेहरूपी अंधकारहै, तिसमें कामक्रोधादिक उलूक अरुपिशाच हैं हे मुनीश्वर ! जोस्त्रीरूपी खड्गके प्रहारतेंयुवारूपी संग्राममेंतें बच्या है, सो पुरुष धन्यहै ! तिसको मेरा नमस्कार है,स्त्रीको संयोग परम दुःखका कारण है, तातें मुझको इसकी इच्छा नहीं,हे मुनीश्वर!जोरोग होताहै,तिसके अनुसार औषध करताहै, तब रोग निवृत होताहै, अरु कोउ कुपथ्य दिये,तबवाकाप्रलय होताहै.रोग बढ जाता है. तातें मेरेरोग के अनुसार औषध करो.

सो मेरा रोग सुनियें,जरा अरु मृत्यु मुझको बड़ा रोगहै, तिसके नाशको औषध मुझको दीजियें. औ स्त्री आदिकजो भोगहैं,सोसब इसरोगकी वृद्धि करतेहैं जैसे अग्नि में घृत डारिये,तब बढ जाताहै, तैसे भोगसों

जरा मृत्यु आदि रोग सो बढ़ते हैं, तातें इस रोगकी निवृत्तिका औषध करौ,नहींतो सबका त्यागकर बनमें जाय रहुंगा ।

हे मुनीश्वर!जिसको स्त्री है तिसको भोगकीइच्छा भीहोतीहै-औजिसको स्त्री नहीं तिसको स्त्रीकीइच्छा भी नहीं, जिसने स्त्रीका त्याग किया है,तिननें संसारका भी त्याग कियाहै, सोई सुखीहै,संसारका बीज स्त्रीहै, तातें मुझको स्त्रीकी इच्छा नहीं,मुझको सोई औपधि दीजैं,तिसतें जरामृत्यु आदिरोगकी निवृत्तिहोई

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे स्त्रीदुराशा वर्णन नाम षोडशः सर्गः १६

सप्तदशः सर्गः १७

अथ जरावस्था वर्णनं ।

श्रीराम उवाच—हे मुनीश्वर ! बालकअवस्था तो महाजड़है, अरु अशक्तहै, औ जब युवावस्था आती है,तब बाल्यावस्थाको ग्रहण कर लेती है. तिसके अनंतर वृद्धावस्था आतीहै, तब शरीर जर्जरीभूत होजाता है,अरु बुद्धि क्षीण होजाती है,बहुरि मृत्युको पावता है; हेमुनीश्वर ! इसप्रकार अज्ञानीका जीवना व्यर्थहै कछु अर्थकी सिद्ध नहीं है, जैसे नदीके तटपर वृक्ष होते हैं; सो जलके प्रवाहकर जर्जरीभूत होजाते हैं;

तैसे वृद्धावस्थामें शरीर जर्जरीभूत होजाताहै, जैसे पवनसो पत्र उड जाताहै,तैसे वृद्धावस्थामें शरीरनाश पाताहै,जेते कछु रोगहैं सो सब वृद्धावस्थामें आय प्राप्त होते हैं, अरु शरीर कृश होजाताहै. अरु स्त्री पुत्रादिक सब वृद्धको त्यागकर देतेहैं,जैसे पक्केफल कोवृक्ष त्याग देताहै, तैसे वृद्धको कुटुंब त्याग देताहै अरु देख हसतेहैं जैसे बावरेको देखके हसके बोलते हैं,जो इसकी बुद्धिसब जात रही,जैसे कमलफूलनेके उपर बरफ पडताहै, अरु कमल जर्जरीभूत होजाता है, तैसे जरा अवस्थामें पुरुष जर्जरीभावको प्राप्तहोता है, अरु शरीर कुबराहो जाता है, केश श्वेत होजाते हैं, शक्ति क्षीणहो जातीहै, जैसे चिरकालका बड़ा वृक्ष होता है तिसमें घुना होता है, तैसे शक्ति कछु रहती नहीं ।

हेमुनीश्वर ! औरहू सब कीर्ति क्षीण होजाती है, परंतु एक आसक्ति मात्र रहतीहै,जैसे बड़े वृक्षपै उलूक आय रहते हैं, तैसे इसमें क्रोधशक्ति आय रहती है, औ शक्तिसब क्षीण होजाती है, हे मुनीश्वर ! जरा-अवस्था दुःखका घर है;जब जरा अवस्था आतीहै,तब सब दुःख इकट्ठे होतेहैं, तिनकर महादीन होजाते हैं, अरु युवावस्था का जो कामका बल रहताहै,सो जरामें क्षीण होजाता है अरु इंद्रियकी आसक्ति घट जातीहै, तिसतें चपलताका अभाव होजाताहै, जैसे पिताके

निर्धन हुवे पुत्र दीन होजाता है, जैसे शरीर निर्बल हुवे इंद्रियाहु निर्बल होजातीहैं औ एक तृष्णा उन्मत्त हो बढ़ जातीहै।

हे मुनीश्वर! जब जरारूपी रात्रि आती है, तबखांसी रूपी श्यार आय शब्द करतेहैं, अरु आधिव्याधिरूपी उलूक आय निवास करते हैं, हे मुनीश्वर! ऐसीजो नीच वृद्धावस्थाहै, तिसकी मुझको इच्छा नहीं, यह देह जरा आयतें कूबरा होय जाताहै; जैसे पक्के फलसों कर वृक्ष झुक जाताहै, जैसे जराके आयतें देह कूबराहो जाताहै, जो युवावस्थामें स्त्री पुत्रादिक चाहते थे, अरु टहल करतेथे, सो सब उसको त्याग देते हैं जैसे वृद्ध बैलको बैलवाला त्याग देताहै, तैसे इसको बंधुत्याग देतेहैं. औ देखके हँसतेहैं, अरु अपमान करते हैं. तिनको ऊंटकी नांई भासता है. हे मुनीश्वर! ऐसीजो नीच अवस्थाहै, ताकी मुझकोइच्छा नहीं; अबजो कछु कर्तव्य मुझको कहो सो मैं करौं।

इस शरीरकी तीनों अवस्थामें कोउ सुखदाई नहींहै क्यों सो बाल्यावस्था महामूढहै; अरु युवावस्था महा विकारवान है, अरु जरा अवस्था महादुःखका पात्रहै बाल्यावस्थाको युवा अवस्था प्राप्त कर लेतीहै, अब स्थाको वृद्ध प्राप्त कर लेताहै; यह अवस्था सब अल्प कालकी हैं, इनकेआश्रय करके मेरेको कहां सुखहोना है; तातें मुझको सोई उपाय कहो, जिसकर इस दुःख तें मुक्त हो जाऊं।

हे मुनीश्वर! जब जरावस्था आतीहै, तब मरनाभी निकट आताहै,जैसे संध्याके आये रात्रितत्कालआय जातीहै, औ जो सध्याके आये दिनकीइच्छा करतेहैं सो मूर्खहैं. तैसे जराके आये जीवनेकी आशा रखनी महामूर्खताहै, हेमुनीश्वर! जैसे बिल्ली चितौनीकरती है, चुहा आवै तो पकर लेऊं; तैसे मृत्यु चितवतहै,जो जरावस्था आवै तो मैं इसका ग्रहण कर लेउं;अरु जरावस्था मानो कालकी सखी है, रोगरूपी मशा लेकर शरीररूपी मांसको सुकातीहै, तब कालजो इसका स्वामी है, सो आयकर भोजन कर लेताहै,अरुशरीररूपी घर है,तिसका स्वामी कालहै, काल जब घरमें आवै, तब तिसके आगे तीनपटरानी आतीहैं,पहिली अशक्तता, दूसरी अंगमें पीड़ा,तिसरीखासी! सोशीघ्र श्वासको चलावती है, अरु श्वेत केश होते हैं,सोचरमकी नांई झुलतेहैं, ऐसे जो कालकी सहेली है सो प्रथमही आइ प्रवेश करतीहै;अरु जरारूपी कहगीलसों शरीरको बनावतीहैः तब जो वाका स्वामीकालहै सो आय प्रवेश करता है।

हे मुनीश्वर! जो परम नीच अवस्थाहै सो जराईहै, सोसब आतीहै तब शरीर जर्जरीभूत कर देतीहै, कंपनेको लगतीहै; अरु शरीरको निर्बल कर देतीहै, अरु कूर करदेतीहै,जैसे कमलपर बरफकी वर्षाहोवै, अरु जर्जरीभूत होय जायतैसे शरीरको जर्जरीभूत करडारती

है, जैसे वनमें बाघन आयके शब्द करतीहै, अरु मृगका नाश करतीहै, तैसे खांसीरूपी बाघन आय मृगरूपी बलका नाश करती है।

हे मुनीश्वर! जब जरा आवतीहै, तब मृत्यु प्रसन्न होताहै; जैसे चन्द्रमाके उदयतें कमलनी खिलआतीहै तैसे मृत्यु प्रसन्न होताहै, अरु यह जरा अवस्था बडी हुईहै; बडे बडे योद्धे हुएहैं; तिनको भी दीन कर दिये हैं; यद्यपि बडे शूर जिनने संग्राममें शत्रुको जीतेहैं; तिनोंको भी जराने जीत लियेहैं; अरु बडे पर्वतके चूर्ण कर डारे हैं तिनको भीजरा पिशाचनीनें महादीनकर दियेहैं, यह जरारूपी जो राक्षसी है; तिसनें सबको दीनकर दिये है, सो सबको जीतने वारी है,

हे मुनीश्वर! यह जरा शरीरको अग्निकी नांईलगती है; जैसे अग्नि वृक्षको लगता है, अरु धूम निकसताहै, तैसे शरीररूपी वृक्षमें जरारूपी अग्नि लगके तृष्णारूपी धूवें निकसते हैं, जैसे डिब्बे में बडे रत्न रहते हैं, तैसे जरारूपी डिब्बेमें दुःखरूपी अनेक रत्न हैं, अरुजरारूपी वसंतऋतु है, तिसकरके शरीररूपी वृक्षदुःखरूपी रस-करके पूर्ण होताहै, जैसे हस्ती सांकलसे बंध्या हुआ दीन होजाताहै, तैसे जरारूपी सांकल करके बंध्या पुरुष दीन होजाताहै, अरु अंग सब शिथिल होजाता है, बल क्षीण होजाता है, अरु इंद्रियां भी निर्बल हो जातीहैं, अरु शरीर जर्जरीभावको प्राप्तहोताहै, परंतु

तृष्णा नहीं घटती है, नित्य बढती चली जातीहै,जैसे रात्रि आती तब सूर्यवंशी कमल सब मूंद जातेहैं, तब पिशाचनी आय विचरने लगतीहै, अरु प्रसन्न होतीहै तैसे जरारूपी रात्रिके आयतें सब शक्तिरूप कमलमूंद जातेहैं, अरु तृष्णारूपी पिशाचनी प्रसन्न होती है।

हेमुनीश्वर ! जैसे गंगाके तटपर वृक्ष रहते हैं सो गंगाजल केवेगसों जर्जरीभूत होजाते हैं,तैसे जो आयु रूपी प्रवाह चलताहै, तिसके वेगकर शरीर जर्जरीभूत होजाताहै,जैसे मासके टुकडेको देख आकाशतेंउडती चील नीचे आय ले जातीहैतैसें जराअवस्थामेंशरीररूप मांसको काल ले जाता है, हे मुनीश्वर!यहतौ कालका ग्रास बन्या हुआ है, जैसे वृक्षको हस्तीखाय जाताहै तैसे जरावाले शरीरको काल देखके खाताहै,

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे जरावस्था निरूपणं नाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

अष्टादशः सर्गः १८

अथ कालवृत्तांत वर्णनं.

श्रीराम उवाच–हे मुनीश्वर । संसाररूपी गर्त्त है तिसमें अज्ञानी गिऱ्या है,सो संसाररूपी गर्त्त अल्प है; अरु अज्ञानी तौ वडा होगया है, संकल्पविकल्पकी आधिक्यतातें बढेहैं;अरुजो ज्ञानवान् पुरुषहै सो संसा-

रको मिथ्या जानताहै फिर संसाररूपी जालमेंफसता नहीं;अरुजो अज्ञानीपुरुष है,सोसंसारको सत्यजानकर संसारकी अस्थारूपीजालमें फसताहै; अरु संसारके भोगकी वांछा करता है;सो ऐसाहै,जैसे दर्पण मेंप्रति बिंब देखकर बालक पकरनेकी इच्छा करता है, तैसे अज्ञानीसंसारको सत्यजानकर जगत्के पदार्थकीवांछा करताहै, यह मेरेको होवै, यह मेरे को नहीं होवै,अरु सहजो सुख है सो नाशात्मक है अभिप्राय यह जो आवताहै अरुजाताहै, जो स्थिरनहीं रहता है इसको काल ग्रास करताहै, जैसे पक्के अनारको बूढा खाय जाता है तैसे सब पदार्थ को काल खाता है।

हे मुनीश्वर! जेते कछु पदार्थ हैं,वे कालग्रसित हैं। बडे बड़े बली सुमेरु जैसे गंभीरबलवाले पुरुष केग्रास कालनें कियेहैं, जैसे सर्पका नकुल भक्षण कर जाताहै तैसे बड़े बलीका ग्रास काल कर जाता है, अरु जगत् रूपी एक गुल्लरका फल है, तिसमें जो मज्जा हैं, सो ब्रह्मादिक हैं सो फलका जो वृक्ष है; तिनका जो बनहै सो ब्रह्मरूप है; तिस ब्रह्मरूप बनमें जेते कछु बनहैं,सो सबइसका आहार है सबको भक्षण काल कर जाता है।

हे मुनीश्वर! यह काल बड़ा बलिष्ठहै,जो कछु देख नेमें आताहै, सो सब इसने ग्रास कर लिया है, तब अवरकी का कहनी है; औ हमारे जो बडे ब्रह्मादिक, तिनका भी काल ग्रास कर जाता है, जैसे मृगका ग्रास

सिंह करखेता है, औ काल किसी करके जान्या नहीं जाता; क्षण, घरी, प्रहर, दिन मास, औ वर्षादिक कर जानियें सो काल है, औ कालकी मूर्ति प्रगट नहीं है, ऐसा अप्रगट रूप है अरु किसीकीस्थित होने नहींदेता अरु एक बेलीकालने पसारीहै, तिसकी त्वचा रात्रिहै; अरु फूल तिसका दिन है. औ जीवरूपी भौंरे तिसपर आय बैठते हैं।

हे मुनीश्वर! जगतरूपी गुल्लरका फूलहै, तिसमेंजी वरूपी मच्छर बहोत रहते हैं तिस फूलका भक्षण काल कर जाताहै, जैसे अनारका भक्षण तोता करता है, तैसे काल भक्षण करता है. अरु जगतरूपी वृक्षहै, अरु जीवरूपी तिसके पत्रहैं, तिसका कालरूपी हस्तीभक्षण कर जाताहै, अरु शुभअशुभरूपी मैंशानको कालरूपी सिंह छेदछेदके खाता है।

हे मुनीश्वर! यहकाल महाक्रूर है, सो किसीपर दया नहीं करता, सबका भोजन कर जाताहै जैसे मृग सब कमलको खाय जाता है, तिसते कोउ रहता नहीं है, परंतु एक कमल उसतें बचे है, सो कमल कैसा है शांति अरु मैत्री तिसके अंकुरहैं, अरु चेतनामात्र प्रकाश है, इस कारणतें वह बचाहै; सो कालरूपीमृग इसको पोहोच नहीं शकता, इसमें प्राप्त हुआकालभी लीन होजाता है।

जेता कछु प्रपंचहै, सोसब कालके मुखमेंहै, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र,कुबेर आदिकर सब मूर्ति कालकीधरीहुई है फिर तिनका भी अंतर्धान कर देता है,हे मुनीश्वर उत्पत्ति, स्थित, अरु प्रलय सब कालतें होते हैं,अनेक वेर महाकल्पकाहु ग्रास कर लेता है, अरु अनेकवेर करेगा,अरु कालको भोजन कियेतें तृप्ति कदाचित् नहीं होती अरु कदाचित् होनहारीहु नहीं, जैसे अग्नि घृत कीआहुतीसों तृप्त नहीं होता, तैसे जगत् अरु सबब्रह्मांडका भोजन करतेहु काल तृप्त नहीं होता,अरु इसका ऐसा स्वभाव है जो इन्द्रको दरिद्री कर देताहै, अरु दरिद्रीको इन्द्रकर देताहै, औ सुमेरु को राई बनाताहै अरु राईका सुमेरु करताहै, सबतें बडे ऐश्वर्य वाले को नीच कर डारताहै, सबतें नीचको ऊंच कर डारताहै अरु बूंदका समुद्रकर डारताहै,अरु समुद्रकाबूंद करता है, ऐसी शक्तिकालमें है,अरु जीवरूपीजो मत्स्य है, तिनको शुभाशुभ कर्मरूपी छुरीसा छेदत रहताहै, फिर कैसा है,जो कालकूपका चक्रहै,जीवरूपी हंडीको शुभ अशुभकर्मरूपी रसुरीसों बाधरखे फिरता है,फिर कैसा है । जीवरूपी वृक्षको रात्रि अरु दिनरूपी कुहारा कर छेदता है ।

हे मुनीश्वर ! जेता कछु जगतविलास भासता हैसो सबका ग्रहण काल कर लेवैगा, अरु जीवरूपी रत्नका काल डिब्बा है, सो अपने उदरमें डारता जाताहै,औ

खेल करताहै, अरु चंद्रसूर्यरूपी गेंदको कबहु ऊर्ध्व उछलता है, कबहु नीचे डारता है, अरु जो महापुरुष हैं सो उत्पत्तिप्रलयमें जो पदार्थहैं, तिनमें स्नेह किसी के साथ नहीं करता, तिसका नाश करनेको कालसमर्थ नहीं, जैसे मुंडकी माला महादेवजी गलेमें धरतेहैंतैसे यहभी जीवकी माला गलेमें डारता है।

हेमुनीश्वर! जो बडे बडे बलिष्ठ हैं, तिनकाभीकाल ग्रहण करलेता है, जैसे समुद्र बड़ाहै, तिसका बडवाग्नि पानकर लेता है औ जैसे पवन भोजपत्रको उडाताहै तैसा कालका बल है; किसीका सामर्थ्य नहींजो इसके आगे स्थित रहै।

हे मुनीश्वर! शांतिगुणप्राधान्य जो देवता हैं अरु रजोगुणप्राधान्यजो बडेराजा हैं, अरु तमोगुणप्राधान्य जो दैत्य राक्षस हैं. तिनमें कोऊ समर्थ नहीं, जो इसके आगे स्थित होवै जैसे टोकनीमें अन्न अरु जल धरके अग्निपर चढाय दियेतौफिर उछलतेहैं, सो अन्नकेदाने कडछी करि कबहु ऊर्ध्व औ कबहु नीचे फिर जातेहैं; तैसे जीवरूपी अन्नके दाने जगत्रूपी टोकनी में परे हुए रागद्वेषरूपी अग्निपै चढेहैं, अरु कर्मरूपी कडछी कर कबहू ऊर्ध्व जातेहैं, कबहु नीचे जातेहैं हे मुनीश्वर! यह काल किसीको स्थिर न होने देता, महाकठोर है, दया किसीपर नहीं धरता; इसका भय मुझको रहता

है,तातें सोई उपाय मुझको कहौ, जिसकर मैं कालतें निर्भय हो जाऊं।

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे कालवृत्तांतनिरूपणं नाम अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

एकोनविंशतितमः सर्गः १९

अथ कालविलासवर्णनं ।

श्रीराम उवाच—हे मुनीश्वर ! यह काल बडा बलिष्ठहै, जैसें राजाके पुत्र शिकार खेलने जातेहैं; तब वनमें बड़े पशुपक्षी खेदको प्राप्त होते हैं, तैसे यह संसाररूपी वनहै, तिसमें प्राणिमात्र पशु पक्षीहैं, जब कालरूपी राजपुत्र तिसमें शिकार खेलने आताहै,तबसब जीव भयको पावतेहैं; अरु जर्जरीभूत होते हैं, फिर तिनकोई मारता है ।

हे मुनीश्वर ! यह काल महाभैरव है, सबका ग्रास कर लेता है, प्रलयमें सबका प्रलय कर डारता है,अरु इसकी जो चंडिका शक्तिहै, तिसका बडा उदरहै, अरु कालिका सबका ग्रास करतीहै, पाछे नृत्य करती है; जैसे बनके मृगको सिंह अरु सिंहनी भोजन करतेहैं औ नृत्य करतेहैं, तैसे जगत्रूपी बनमें जीवरूपी मृगका भोजन करके कालअरु कालिका नृत्य करतेहैं

बहुरि इनतें जगत्का प्रादुर्भाव होता है, नानाप्रकारके पदार्थनको रचते हैं, पृथ्वी, बगीचे, बावरी, आदिसब पदार्थ इनहीतें उत्पन्न होते हैं, अरु सुन्दर जीवनकीहु उत्पत्ति इनतें होती है. औ एक समयमें इनका नाश भी कर देते हैं, सुंन्दर समुद्र रचके फिर वामें अग्नि लगाय देते हैं, अरु सुंदर कमलको बनायके फिरवाके उपर बरफकी बर्षा करते हैं, इत्यादि नानापदार्थनको रचिके तिनका नाश करतेहैं, जहां बड़े स्थान बसतेहैं तिनको उजड कर डारतेहैं, फिर उजाड में बस्ती कर धरतेहैं, अरु नाशभी करतेहैं,स्थिर रहने किसी को नहीं देती,जैसे बागमें वानर आयके वृक्षको ठहरनेनहीं देता; तैसे कालरूपीवानर किसीपदार्थ को स्थिररहने नहीं देता।

हे मुनीश्वर!इस प्रकारसों सब पदार्थ कालसोंकर जर्जरीभूत होते हैं,तिनका मैं आश्रय किसीरीतिसोंकरों मुझको तो नाशरूप भासताहै,तातें अब मुझको किसी जगतके पदार्थकी इच्छा नहीं।

इति श्रीयो० वैरा० काल० एकोनविंशतितमः सर्गः ॥ १९ ॥

विंशतितमः सर्गः २०

अथ कालजुगुप्सा वर्णनं।

राम उवाच-हे मुनीश्वर! इस कालका महापराक्रम है, इसके तेजके सन्मुख रहनको कोउ समर्थ नहीं

क्षणमें ऊंचको नीच कर डारताहै, अरु नीचको ऊंचकर डारता है, तिसका निवारण कोउ कर नहीं शकता, सब इसीके भयसे परे कंपतेहैं; यह महा भैरव है, सब विश्व-का ग्रास कर लेताहै; अरु इसकी चंडिकारूप शक्तिहै, सो बलवान है, सो नदीरूपहै, तिसका उल्लंघन कोउ नहीं करी शकताहै. अरु महाकालरूप कालीहै, तिसका बड़ा भयानक आकार, अरु कालरूप जोरुद्रहै, तिसतें अभिन्नरूपी कालिकाहै, सो सबका पान कर लेतीहै, पाछे भैरव अरु भैरवनी नृत्य करतेहैं।

सो काल कालिका कैसेहैं; बड़ा जिनका आकारहै अरु आकाश शीस है, अरु जिनका पाताल चरणहै दशों दिशा जिनकी भुजाहैं; सप्त समुद्र जिनके हाथमें कंकणहैं, संपूर्ण पृथ्वीरूप तिनके हाथमेंपात्रहै, तिनके उपरजीवहैं सो भोजनयोग्यहैं; हिमालय अरु सुमेरु पर्वतदोनों कानोंमें बडे रत्न हैं; चंद्रमा सूर्य जिनकेलोचन हैं; अरु सब तारागण वाके मस्तकमें बिंदुहैं, अरु हाथमें त्रिशूल अरु मुसल आदि शस्त्रहैं, अरु जिनके हाथमें तंद्रारूपी फांसा है, तिसकर जीवको मारतेहैं, ऐसेकाल विषे जीवरूपी पक्षी पड़े फसते हैं, सो फसे हुए शांति को नहीं प्राप्त होते; हे मुनीश्वर! यह तो सब नाशरूप पदार्थ हैं, इनमें आश्रम किसी का करना; जिकर सुखी होवें, तौ स्थावरजंगम जगत् सब काल के मुखमें हैं, यह सब नाशरूप मुझको दृष्टि में आवै है; तातें निर्भय पद होय सो मुझको कहौ।

इति श्रीयोग० वैरा० कालजुगुप्सावर्णनं नाम विंशतितमः सर्गः २०

काउमें नहींहै, अरु जहां उजारहै; तहां क्षणमें बस्ती कर डारता है, अरु जहां बस्ती होवैतहां क्षणमेंउजार करताहै. इसीतें तिसका नाम देव कहतेहैं, अरु ति-सको कृतांत भी कहतेहैं; अरु बडे बड़े पदार्थ उपजत होते हैं, अरु तिसका नाशभी होता है, अरु स्थिर किसीकी रहने नहीं देता, तिसतें इसका नाम कृतांतहै अरु नित्यरूपीहु यहीहै जो इस आदि धऱ्याहै, सोइ कर्ता अरु कर्मरूपहै, काहेतें जोपरिणाम जिसकाअनि त्यरूप है, इसीतें इसका कर्म नाम है, सो कैसे नाश करताहै, जब अभावरूपी धनुष्य हाथमें धरताहै तिस कर रागद्वेषरूपी वाण चलाता है,तिस बाणतें जर्जरी भूत करकेनाश करताहै अरु उत्पत्तिनाशमेंउसकोयत्न भीकछु करना नहीं पड़ता है, इसको तो खेल जैसाहै, जैसे बालक मृत्तिकाकी सेना बनाता है,फिर उठायकर नाशभी कर देताहै, तैसे कालको उपजावने अरुनाश करनेमें यत्न करना नहीं पडताहै, हे मुनीश्वर ! काल रूपी धीवर है; तिसनें क्रियारूपी जाल पसारी है,तिस विषे जीवरूपी पक्षी पड़े फसते हैं, सो फसे हुए शांति को नहीं प्राप्त होते, हे मुनीश्वर ! यह तो सब नाशरूप पदार्थ हैं; इनमें आश्रम किसी का करना; जिकर सुखी होवै; तो स्थावरजंगम जगत् सब काल के मुखमें है, यह सब नाशरूप मुझको दृष्टि में आवै है, तातें निर्भय पद होय सो मुझको कहो ।

इति श्रीयोग० वैरा० कालजुगुप्सावर्णनं नाम विंशतितमः सर्गः २०.

एकविंशतितमः सर्गः २१

अथ कालविलास वर्णनं ।

श्रीराम उवाच—हे मुनीश्वर! जेते कछु पदार्थ भासतेहैं, सो सब नाशरूप हैं तातें किसको इच्छा करौं। औ कौनका आश्रय करौं?इनकी इच्छा करनी सो मूर्खताहै. अरु जेती कछु चेष्टा अज्ञानी करताहै सो सब दुःखके निमित्तहैं अरु जीवनेतेंअर्थकीसिद्धि कछु नहींहै काहेतें जोबालक अवस्था होतीहै तब मूढता रहतीहै, विचार कछु नहीं रहता, अरुजब युवा अवस्था आतीहै, तब मूर्खता करके विषयको सेवतेहैं अरु मानमोहादि विकारसों मोहेई जाते हैं, तासेंभी विचार कछु नहीं होता, अरु स्थिरभी नहीं रहते,फिर दीनका दीन रहिके विषयकीत्रष्णा करताहै,शांतिको नहीं पावता है।

हे मुनीश्वर! आयुष्य जोहै सो महाचंचल है,अरु मृत्युतो निकटहै, वाकौ अन्यथा भाव नहीं होवै, हे मुनीश्वर! जेते कछु भोगहैं सो रोगहैं,अरु जिसको संपदाजानतेहैं,सो आपदा हैं,अरुजिसको सत्यकहते हैं,सो असत्यरूपहैं. अरु जिस स्त्रीपुत्रादिकको मित्र जानतेहैं, सोसब बंधन का कर्ता हैं,अरु इंद्रिय जोहैं सो महाशत्रुरूपहैं; सोसब मृगत्रष्णाके जलवत् हैं,

अरु यह देह हैसो बिकाररूप है,अरु मन महाचंचल है, औ सदा अशांतिरूपहै, अरु अहंकारजोहै सोमहा नीचहै,इसनेंई दीनताको प्राप्त कियाहै इसकर जेते कछु पदार्थ इसको सुखदायक भासतेहैं सो सब दुःख केदेनहारेहैं,तिसकर इसको कदाचित शांति नहींहोती तातें मुझको इनकी इच्छा नहीं,यद्यपि देखनेमात्रसुंदर भासतेहैं तौभी इनमें सुख कछु नहीं, सो पदार्थ स्थिर रहनेका नहीं,जैसे समुद्रमें नानाप्रकारके तरंग भासतेहैं सोसब बडवाग्निकर नाश होतेहैं, तैसे यह पदार्थभी नाशको पावतेहैं;मैं अपनी आयुविषे कैसेआस्थाकरौं?

हे मुनीश्वर! बडे समुद्रजो दृष्टि आवतेहैं.अरु सुमेरु आदि बडे पदार्थ हैं, सो सब नाशको पाते हैं तब हम सारिखेकी कहा वार्ता है ! औ बडे बडे दैत्य, राक्षसहु होयके नाश पाय गयेहैं. तौ हमसारिखेकी कहा वार्ता है। अरु देवता, सिद्ध, गंधर्व, हुएहैं सो सब नाशको पावतेहैं, तिनको नाम संज्ञा भी नहीं रही तब हमसारि-खेकी कहा वार्ता। पृथ्वी, जल, अरु अग्निजो दाहक शक्ति धरनेवाला है, अरु पवन जो है, सो वीर्य सहित सब नाश हो जायेंगे, कछु उनकी सत्यता भी न रहेगी तौ हमसारिखेकी कहा बार्ता ? अरु यम, कुबेर, बरुण इंद्र; बडे तेजवालेहैं; सो सब नाश पावेंगे तौ हमसा-रिखेकी कहा कहनीहै। औ तारामंडल जो दृष्ट आते हैं, सो सब गिर पडेंगे जैसे सूके पात वृक्षतें वायुसों

गिर जाते हैं; तैसे तारे गिरतेहैं, तब हमसारिखेकी कहा वार्ता। हे मुनीश्वर। ध्रुव, जो स्थिर भासता है, सो भी अस्थिर हो जायगा, अरु चंद्रमा अमृतमयमंडलका दृष्टीमें आताहै औ सूर्य अखंडमंडलहै जिसका ऐसा जो प्रकाशसंयुक्त दृष्टि आताहै, सोसब नाशहो जावहींगे, तौ हमसारिखेकी कहा वार्ताहै! औरनकीहु कहा वार्ता है! यहजो बडे ईश्वर जगतके अधिष्ठाता हैं तिनका भी अभाव होय जाताहै, परमेष्ठीजो ब्रह्माहैं, तिनका भी अभाव होय जाताहै, हरिजो विष्णु सोभी हर जायेंगे, महाभैरवरूप जो रुद्र, सो भी शून्य हो जायगा; तौ हमसारिखेकी कहा वार्ता करनी। अरुकाल जोसबको भक्षण करनेहाराहै, सो भी टूकटूक होयके नाशकोप्राप्त होवैगा; अरु कालकी स्त्रीजो नेतहै, सोहु अनंतताको प्राप्तहोवैगी, अरुसबका आधार जोआकाश है, सोभी नाश होजायगा, तौ हमसारिखेकी कहा वार्ता? अरु जेता कछुजगत अर्थकर सिद्ध होताहै, सो सब नाश हो जावैगा. कोउहु स्थिर रहनेका नहींतब हम किसकी आस्था करौं। अरु किसका आश्रयकरौं। यह जगत् सब भ्रममात्र है, अज्ञानीकी इसमें आस्था होती है औ हमारी नहीं है जोजगतभ्रम कैसे उत्पन्नभया है अरु मैं इतना जानता हौं, जो संसारनें इतनादुःखी होते हैं, सो अहंकारमें कियाहै।

हे मुनीश्वर ! इसका जो परमशत्रु अहंकार है, इस करके भटकता फिरता है, जैसे जेवरीसाथ बांध्याहुआ पतंग कबहु ऊर्ध्व, कबहु नीचे जाताहै, स्थिर कबहु नहींरहता, जैसे जीवहु अहंकार करके कबहुऊर्ध्व कबहु अधः जाता है, स्थिर कबहु नहीं होता, जैसे अश्वतें आरूढ रथतिनके उपर बैठके सूर्य आकाशमार्गमें भ्रमता है तैसे यह जीव भ्रमता है, स्थिर कदाचित नहींहोता हे मुनीश्वर ! यह जीव परमार्थ सत्यस्वरूपतें भूलाहुआ भटकताहै, अरु अज्ञान करके संसारमें आस्था करता है, अरु भोगहुको सुखरूप जानकरतिसमें तृष्णाकरता है; औ जिसको सुखरूप जानताहै सो रोगसमान है, औ विषकर पूर्ण सर्प जैसे हैं, सो जीवका नाश करन हारेहैं औ जिनको सत्य जानता है, सो असत्यहैं, सब कालके मुखमें ग्रसे हुए हैं।

हे मुनीश्वर! विचारविना अपना नाश आपहीकरता है, काहेतें जो इसका कल्याण करनेहारा बोध है; जो सत्य विचार बोधके शरण जाय तो कल्याण होवे, औ जेते पदार्थहैं, सो स्थिर कोउ नहीं, इनको सत्य जानना दुःखके निमित्त है, हे मुनीश्वर ! जब तृष्णा आतीहै तब आनन्द और धैर्यका नाशकर देतीहै, जैसे वायुमेघका नाश कर डारता है तैसे तृष्णा नाश कर डारतीहै, तातें मुझको सोइ उपाय कहौ; जिसकर जगत्का भ्रम मिट जावे अरु अविनाशी पदकी प्राप्ति होवे, इस भ्रम

रूप जगतकी आस्था मैं नहीं देखता, तातें इच्छा तैसीकरौ, परंतु सुखदुःख इसीको होन हैं सो होइंगे, मिटवेके नहीं, भावें पहारकी कंदरामें बैठौ,भावै कोटमें बैठो, परंतु जो होनेका सो मिथ्या नहींहोवै है;इसनिमित्त यत्न करना मूर्खता है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे कालविलासवर्णन नाम एकविंशतितम सर्गः ॥ २१ ॥

द्वाविंशतितमः सर्गः २२

अथ सर्वपदार्थाभाववर्णनं ।

श्रीराम उवाच–हे मुनीश्वर ! यहजो नानाप्रकार के सुंदर पदार्थ भासते हैं, सो सब नाशरूपहैं, इसकी आस्था मूर्ख करतेहैं, यहतौ मनकी कल्पना करवचे हुए हैं, तिसमें किसकी आस्था करौं ?

हे मुनीश्वर ! अज्ञानी जीवकाजीवनाव्यर्थहै;काहेतें जो जीवनेतें उनका अर्थसिद्ध कछुनहीं होता;जबकुमार अवस्था होती है, तब मूढ़ बुद्धि होती है, तिसमें बिचार कछु नहीं होता, जब युवावस्था आती है, तब कामक्रोधादिक विकार उत्पन्न होते हैं, तिनकर सदा ढांपे रहते हैं, जैसे जलमें पक्षी बंध जाता है, अरु आकाशम गको देखी नहीं शकताहै, तैसे काम क्रोधादिक

करि ढप्या हुआ विचार मार्ग को देखी नहीं शकता. जब बृद्धावस्था आती है, तब शरीर जर्जरीभूत होजाता है, अरु महादीन होता है, बहुरि शरीर को भी त्याग देता है, जैसे कमलके उपर बरफ पड़ता है, तब तिसका भौंरा त्याग करता है,तैसे जब शरीररूपी कमलकोजरा का स्पर्श होता है तब जीवरूपी भौंरा त्याग कर देता है।

हे मुनीश्वर! यह शरीर तबलग सुन्दर है, जबलग बृद्धावस्था प्राप्त नहीं होती,जैसे चन्द्रमाका प्रकाश राहु दैत्यनें आवरण नहीं किया तबलग रहता है, जब राहु दैत्य आवरण करता है, तब प्रकाश नहीं रहता है, तैसे जरा अवस्था के आये युवा अवस्था की सुन्दरता जाती रहती है, हे मुनीश्वर! जरा के आये तें शरीर कृश हो जाता है, अरु तृष्णा वढ जाती है, जैसे वर्षाकालमेंनदी वढ जाती है, तैसे जरा अवस्था में तृष्णा वढ जातीहै, अरु जो पदार्थ की तृष्णा करता है, सो पदार्थ भीदुख रूप है, तृष्णा करके आपहीं दुःख पावता है।

हे मुनीश्वर! तृष्णारूपी समुद्र है, तिसमें चित्तरूपी वेडा पऱ्या है, रागदोषरूपी मत्स्यसकेंरिकबहु ऊर्ध्वजाता है, कबहु नीचे आता है, स्थिर कदाचित् नहीं रहता, हे मुनीश्वर। कामरूपी वृक्षहै, तिस बृक्षमें त्रष्णारूपी लता लगती है; तिसमें विषयरूपी फूलहैं, जब जीव रूपी भौंरे तिसके उपर बैठते हैं,तब विषयरूपी बेलीसों मृतक हो जाते हैं।

हे मुनीश्वर। त्रष्णारूपी एक बडी नदी है तिसमें रागदोषादिक बडे मत्स्य रहते हैं, तिस नदीमें परेहुए जीव दुःख पातेहैं, अरु जो संसारकी इच्छा करता है, सो नाशरूप है।

हे मुनीश्वर। उन्मत्त हस्ती अरु तुरंगके समूह ऐसा जो नररूपी समुद्र तिसको तर जातेहैं तिसको भी मैं शूर नहीं मानता, परंतु जो इंद्रियरूपी समुद्र तिसमें मनोवृत्तिरूपी तरंग उठतेहैं, ऐसे समुद्रको जो तर जाताहै,तिसको शूरमानताहों जिसकेपरिणाममें दुःख होवे, तैसी क्रिया अज्ञानी जीव आरम्भ करतेहैं, औ जिसके परिणाममें सुख, तिसका आरम्भ नहीं करते औ कामके अर्थकी धारणा करतेहैं, ऐसेआरम्भ कियेते शरीरकी शांति पावेहु सुखकी प्राप्ति नहीं होती, ऐसेई कामना करके सदा जलते रहतेहैं, अनात्मपदार्थकी त्रष्णा करतेहैं सो शांतिको कैसे प्राप्त होवै।

हे मुनीश्वर! यह त्रष्णारूपी नदीहै, तिसमें बडा प्रवाह है, तिसके किनारे वैराग्य अरु संतोष दोनोंवृक्ष खडेहैं, तो तृष्णा नदीके प्रवाहतें तिन दोनोंका नाश होता है, हे मुनीश्वर। त्रष्णाबडी चंचल है, किसीको स्थिर होने नहीं देती,अरु मोहरूपी एक वृक्षहै,तिसके चहुंफेर स्त्रीरूपी बल्ली है,सो विष करके है, तिसपर चित्तरूपी भौंरा आय बैठता है, तब स्पर्शमात्रतें नाश पावता है, जैसे मोरका पुच्छा हिलता रहता है, तैसे

अज्ञानीका चित्त चंचल रहता है, सो मनुष्य पशुके समान है,जैसे पशु दिनको जंगलमें जाय आहारकरते चलते फिरतेहैं,अरु रात्रिको आय घरमें खुटासों बंधन पावतेहैं तैसे मूर्ख मनुष्यहु दिनको घर छोडके व्यवहारमें फिरतेहैं अरु रात्रिको आय अपने घरमें स्थिरहोते हैं, तातें परमार्थकी सिद्धि कछु नहीं होती,जीवना वृथा गुमावते हैं ।

बालक अवस्था में शून्य रहतेहैं, अरु युवावस्थामें कामकरि उन्मत्त होतेहैं,सोकामकरके चित्तरूपी उन्मत्त हस्ती स्त्रीरूपी कंदरामें जाय स्थित होतेहैं, सो भी क्षणभंगुर है, बहुरि वृद्धावस्था होतीहै, तिसकर शरीर कृश होजाताहै, जैसे बरफतें कमल जर्जरीभावकोप्राप्त होताहै,तैसे जराकरके शरीर जर्जरीभावको प्राप्तहोता है अरु सब अंग क्षीण होजातेहैं. अरु एक तृष्णाबढ जाती है ।

हे मुनीश्वर।यह पुरुष महापशुहै, सोआकाशकेफूल लेनेकी इच्छाकरताहै,ऐसे बडे पर्वतपर चढकर आकाशका फूललेनेकी इच्छा करताहै; सो बडी कंदरा अरु वृक्षमें गिर पडता है । तैसे यह जीव मनुष्यरूपी पर्वतपर आय रह्या है,अरु प्रकाशके फूलरूपी जगत्के पदार्थकी इच्छा करताहै, सो नीचेको गिरपडनेकाहै, सो रागदोषरूपी कंटकवृक्षमें जाय पडैगा ।हेमुनीश्वर। जेते कछु जगतके पदार्थहैं,सो सब आकाशकेफूलकी

नाईं नाशवानहैं, इनमें आस्था करनी सो मूर्खताहै; यहतौ शब्दमात्र जैसा है, तिसतें अर्थसिद्धि कछु नहीं होती।

अरुजो ज्ञानवान् पुरुषहैंतिनको विषयभोगकीइच्छा नहीं रहती,काहेतें जोआत्माके प्रकाश कर इनकोमिथ्या जानते हैं, हे मुनीश्वर! ऐसे ज्ञानवान पुरुषौं दुर्विज्ञेय हैं, हमको तो स्वप्नमें भी नहीं भासताहै, औ यह विरक्तात्मा दुर्लभ है,जिनको भोगकी इच्छा नहीं है, सर्वदा ब्रह्मकी स्थित कर भासताहै, ऐसे पुरुषको संसारकी इच्छा कछु नहीं रहती,काहेतें जोयह पदार्थ सो नाशरूपहै, हे मुनीश्वर!पर्वतको जिसओर देखिये तहांपत्थरकर पूर्ण दृष्टि आताहै, अरु पृथ्वी मृत्तिका-करिपूर्ण दृष्टि आती है, अरु वृक्ष काष्ठकरि पूर्णदृष्टि आताहै, समुद्र जलकण पूर्णदृष्टि आताहै;तैसे शरीर अस्थि, मांसकर पूर्ण भासताहै, ये सब पदार्थ पांच तत्वकरि पूर्ण हैं, औ नाशरूप हैं, ऐसा रूप ज्ञानी जानके किसीकी इच्छा नहीं करता।

हे मुनीश्वर! यह जगत् सब नाशरूप है, देखते २ नाशको पावता है; तिसमें मैं किसका आश्रय करके सुख पाऊं! जब युगकी सहस्र चौकरी होती है तब ब्रह्माका एक दिन होता है, तिस दिनके क्षयहुएतें सब जगतका प्रलय होताहै, बहुरि ब्रह्माहु कालकर नाशहो जाताहै,अरु ब्रह्माहू जितने होगयेहैं तिनकी

संख्या नहीं होती, असंख्य ब्रह्मा नाश होगयेहैं, तो हमसारिखेकी कहा वार्ता करनीहै । हमकाउ भोगकी वासना नहीं करते. क्यों जो सब चलरूप है कछुस्थिर रहनेका नहीं सब नाशरूपहै. इनकी आस्था मूर्ख करतेहैं, तिसके साथ हमको कछु प्रयोजन नहीं, जैसे मृग मरुस्थलको देख जलपान करनेको दौरता पैसो शांतिको नहीं पावता, तैसे मूर्ख जीव जगतके पदार्थको सत्य मानकर तृष्णाकरता है, परंतु शांतिको नहींपावता काहेतें जो सब असार रूप है, अरु.

जो स्त्री, पुत्र, कलत्र भासतेहैं, सो जबलग शरीर नष्ट नहीं हुआतबलग भासतेहैं, जब शरीर नष्टहोजायगा तब जानिवे में भी न आवैगा जो कहां गये? अरु कहातें आयेथे! जैसे तेल अरु वत्तीकर दीपक प्रकाशता है तब बडा प्रकाशवान दृष्टि आवताहै, पाछे जब बूझ जाताहै, तब जान्या नहीं जाता जो कहां गया; तैसे बत्तीरूप बांधव हैं, औ तिसविषे स्नेहरूपी तेलहै, तिसकर जो शरीर भासता है सो प्रकाश है, जब शरीररूपी दीपका प्रकाश बूझ जाता है तब जान्या नहीं जाता जोकहां गया, हे मुनीश्वर ! यह बन्धुकामिलाप है; सो जैसे तीर्थयात्राका संघ चल्या जाता होवै. सो जब एक क्षणमें वृक्षकी छाया नीचे बैठतेहैं. फिर न्यारे न्यारे होय जातेहैं, तैसा बांधवका मिलापहै, जैसे उस

यात्रामें स्नेह करना मूर्खता है, तैसे इनमें भी स्नेह करना मूर्खता है।

हे मुनीश्वर! अहंममताकी जेवरीके साथ बांधेहुए घटीयंत्रकी नांई सब भ्रमते फिरतेहैं, तिनको शांति कदाचित नहीं होती, यह देखनेमात्र तौ चेतन दृष्टि आवताहै, परंतु पशु और बन्दर इनतें श्रेष्ठ हैं; जिनकी संमति देह इंद्रियके साथ बांधीहुईहै, अरु आगमापाइ हुई है; इसमें आस्था रखनीसो महामूर्खताहै; उनको आत्मपदकी प्राप्ति होनी कठिन है. जैसे पवनकरवृक्षके पात टूटके उड जातेहैं, फिर उनको वृक्षकेसाथलगना कठिन है; तैसे जो देहादिकसाथ बांधे हुएहैं तिनको आत्मपद पावना कठिन है।

हे मुनीश्वर! जब आत्मपदतें विमुख होताहै, तब जगत्के भ्रमको देखताहै; अरु जब आत्मपदकी ओर आताहै तब संसार इसको बडा बिरस लगता है; औ ऐसा पदार्थ जगत्में कोउ नहीं जो स्थिर रहैगा, जो कछु पदार्थहैं सो नाशको प्राप्त होतेहैं, तातें मैं किसकी आस्था करौं? औ किसका आश्रय करौं। सब नाशवंत भासते हैं, वह पदार्थ मुझको कहो, जिसका नाश न होवै।

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे सर्वपदार्थाभाववर्णनं नाम द्वाविंशतितमः सर्गः ॥२२॥

अथोविंशतितमः सर्गः २३

अथ जगद्विपर्ययवर्णनं ।

श्रीराम उवाच—हे मुनीश्वर ! जेता कछु स्थावर जंगम जगत् दीसताहै, सो सब नाशरूप है, कछु भी स्थिर रहनेका नहीं. जो खाई थीसो जलकर पूर्णहोगई है, अरु जो बडे जलकर समुद्र पूर्ण दिखते थे, सो खाई रूप व्है गये; अरु जो सुंदर बडे बगीचे थे, सोआकाशकी नांई शून्य होगये, अरुजो शून्य स्थानथे, सोसुंदर वृक्ष हुए बनकर दृष्ट आतेहैं. जहां बस्ती थी, तहांउजार होगई है; अरु जहां उजार थी तहां वस्ती होगई है; अरु जहां गडहेथे तहां पर्वत होगयेहैं; अरु जहांबडे पर्वतथे, तहां समान पृथ्वी होगई. हे मुनीश्वर ! इस प्रकार पदार्थ देखते विपर्ययहो जातेहैं; स्थिरनहीं रहते, बहुरि मैं किसका आश्रय करौं ! अरु किसे पावनेका जतन करौं; यह पदार्थ तो सब नाशरूपहैं, अरु जो बडे बडे ऐश्वर्यकर संपन्न थे, अरु जोबडे कर्तव्य करते थे, औ बडे वीर्यवान, बडे तेजवान हुएहैं, सोभी मरणमात्र होगये हैं, तब हमसारिखेकी कहा वार्ताहै ? सब नाश होते हैं, तरहभारेसी घडीपलमें चलजाना है, रहना किसी को नहीं ।

हे मुनीश्वर ! यहै पदार्थ बडे चंचलरूप हैं, औ एक

रस कदाचितहु नहीं रहते. एक क्षणमें कछु हो जाता है, दूसरी क्षणमें कछु होजाताहै ! एक क्षणमें दरिद्री होजातेहैं, दूसरी क्षणमें संपदावान होजातेहैं । एक क्षणमें जीवतेदृष्टि आवतेहैं; दूसरी क्षणमें मर जातेहैं एक क्षणमें मुवेभीजीते उठते हैं,यह संसारकी स्थिरता कबहु नहीं होती;ज्ञानवान इसकी आस्था नहीं करते एक क्षणमें समुद्रके प्रवाहके ठिकाने मरुस्थल होयजाते हैं , अरुमरुस्थलमें जलके प्रवाहहो जातेहैं; हे मुनीश्वर इस जगत का अभ्यास स्थिर नहीं रहता, जैसे बालक का चित्त स्थिर नहीं रहता, तैसे जगत का पदार्थ एकभी स्थिर नहीं रहता; जैसे नट स्वांग को धरताहै सो कबहु कैसा, कबहु कैसा, एक स्वांगमें नहींरहता तैसे जगतके पदार्थ अरुलक्ष्मी एकरस नहीं रहते,कबहु पुरुष स्त्री होजाता है; कबहु स्त्री पुरुष हो जाती है; अरु मनुष्य पशु होजाता है, पशु मनुष्य होजाता है औ स्थावरका जंगम अरु जंगमका स्थावर होजाता है, मनुष्य देवता होजाता है; औ देवता का मनुष्य होजाताहै. इस प्रकारघटीयंत्रकी नांई जगतकी लक्ष्मी स्थिर नहीं रहती, कबहु ऊर्ध्वको जातीहै, कबहु अधको जातीहै, स्थिर कबहु नहीं रहती;सदाभटकती रहती है ।

हे मुनीश्वर!जेते कछु पदार्थ दृष्टिमें आते हैं,वे सब नष्ट होजानेकेहैं, कैसेई स्थिर रहनेके नहीं, ए सब

नदियां है, सोसब वडवाग्निमें लय होय जायेंगीतैसे जेते कछु पदार्थ हैं, सो सब अभावरूपी बड़वाग्निको प्राप्त होहिंगे;अरु बड़े बलिष्ठहु मेरे देखते लीनहोगये हैं; अरुजो बडे सुंदर स्थान सो शून्य हो गये हैं ,अरु जो सुंदर ताल, अरु वगीचे, मनुष्यकरि संपूर्ण ऐसे स्थान सो शून्य होगयेहैं, अरुजो मरुस्थलकी भूमिका सो सुंदरताको प्राप्त भई है; अरु घट पट हो गयेहैं वरके शाप होजाते हैं;शापके वरहो जाते हैं; इस प्रकार हे विप्र ! जो जगत् दृष्टिमें आताहै,सो कबहु संपदा, कबहु आपदारूप है,अरु महाचपलरूप है,हेमुनीश्वर ! ऐसेसब अस्थिररूप पदार्थ, हैं तिसका विचारबिना मैं कैसे आश्रय करौं ? अरु किसकी इच्छा करौं ? सब नाशरूप हैं।

औजो यह सूर्य प्रकाशकर दृष्टिमें आवताहै, सोभी अंधकाररूप होजायगा, अरु अमृतकर पूर्ण जो चंद्रमा दृष्टिमें आवता है सो भी बिषकर पूर्ण हो जायगा.अरु सुमेरु आदिक जो पर्वत दृष्टि आवत हैं,वे सब नाश होवेंगे, सब लोक नाश हो जायेंगे, अर्थात मनुष्य, देवता, यक्ष, राक्षस आदिक सब नाश पावेंगे.तातें हे मुनीश्वर !और किसीकी वार्ता क्या कहनीहै ब्रह्मा विष्णु रुद्र जो जगतके ईश्वरहैं वेभी शून्यहो जायंगे तौ हमसारिखेकी कहावार्ता कहनीहै। जेता कछुजगत दृष्टि आवताहै;औ स्त्री, पुत्र, बांधव, ऐश्वर्य, शौर्य

तेजकरिके नानाप्रकारके जीव भासतेहैं, सो सब नाशरूपहैं, बहुरि मैं किस पदार्थका आश्रय करौं,औ किसकी इच्छा करौं ।

हे मुनीश्वर ! जो पुरुष दीर्घदर्शीहैं,तिसको तौ सब पदार्थ विरस होगयेहैं, किसी पदार्थकी इच्छा नहीं करते,काहेतें जो सब पदार्थ नाशरूप भासतेहैं, औ अपनी आयुष्यको बिजुरीके चमकावत देखतेहैं,जैसे बिजुरीका चमकार होताहै,तैसा शरीरका आयुष्यहै, जिसको अपनी आयुष्यकीप्रतिति होतीहैसो किसीकी इच्छा करता नहीं,जैसे किसीका बलिदानअर्थ पालते हैं,तब उह खाने,पीने,भुगतनेकी इच्छा नहींकरता, तैसे जिसको अपना मरना सन्मुख भासताहैतिसको भी किसीपदार्थकी इच्छा नहीं रहती,यह सब पदार्थ आपही नाशरूपहैं,तौहम किसीका आश्रयकर सुखी होवैं ? जैसे कोउ पुरुष समुद्रमैं मत्स्य आश्रय करके कहै जोमैं इसपर बैठके समुद्रके पार जाउंगा, अरु सुखी होउंगा, सोमूर्खता करके डूबहीं मरेगा;जैसेजिस पुरुषनें इसपदार्थका आश्रय लियाहै,अरु अपनेसुख के निमित्त जानता है, सो नाशको प्राप्त होयगा ।

हे मुनीश्वर ! जो पुरुष जगतको विचारता रहताहै, तिसको यह जगत रमणीय भासता है, अरु रमणीय जानके नानाप्रकारके कर्म करताहै,और नानाप्रकारके संकल्प करके जगतमें भटकता है, कबहु उपर कबहु

नीचे आताहै, जैसे पवनकर कबहू ऊंचे कबहू नीचे आतीहै अरु स्थिर नहीं रहती, तैसे यहजीव भटकता फिरताहै, स्थिर कबहु नहीं रहता, अरु जिस पदार्थकी इच्छा करता है, सो सब कालका ग्रासरूप होगयेहैं, जैसे वनमें अग्नि लगतीहै, तबसब इंधनादिकको जारती है, तैसे जेते कछु पदार्थ हैं, सो सब इंधनरूपीहैं, जगत वन है, तिसको कालरूपी अग्नि लगीहै, तिसनेंसबको ग्रास लियाहै, बहुरि जो इस पदार्थकी इच्छा करते हैं, सो महामूर्खहैं ।

अरु जिनको आत्मविचारकी प्राप्तिहै, तिनको यह जगत भ्रमरूप भासताहै, अरु जिनको आत्मविचारकी प्राप्ति नहीं है, तिनको यह जगत रमणीय भासताहै अरु जगतको देखते नाशही हो जाताहै; स्वप्नपुरीकी नांई संसारकी मैं कैसे इच्छा करों ? यहतौ दुःखके निमित्त है, जैसे मिठाईमें विष मिलाया है, तिसका भोजन करनेवाले मृत्युको प्राप्त होतेहैं तैसे विषय भुगतनेवाले नाशको प्राप्त होते हैं ।

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्य प्रकरणे जगद्विपर्य्ययवर्णनं नाम त्रयोविंशतितमः सर्गः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशतितमः सर्गः २४

अथ सर्वकालकाकिमादृत वर्णनं ।

श्रीराम उवाच—हे मुनीश्वर ! इस संसारमें भोग

रूपी अग्नि लगी है, तिसकर सब जलते हैं; भोगसों जीव दीन हो गया है. जैसे तालमें हाथीके पावसोंकर कमलका चूर्ण हो जाताहै, तैसे भोगसोंकर मनुष्य दीन हो जाते हैं; जैसे वायुसों मेघ हो जाता है, तैसे काम क्रोध दुराचारसों शुभ गुण नष्ट होजाते हैं, जैसे करीरीके पत्तेमें अरु फलमें कांटे हो जाते हैं, तैसे विषयकी वासनारूपी कंटक आय लगते हैं.

हे मुनीश्वर! यह जगत सब नाशरूप है; किसी पदार्थका स्थिर रहना नहीं है. वासनारूपी जल, अरु इंद्रियांरूपी गांठी है, तिसमें पुरुष कालसों आय फस्या है, सो बड़े दुःखको प्राप्त होवेगा. हे मुनीश्वर! वासनारूपी सूतमें जीवरूपी मोती परोये हुए हैं, अरु मनरूपी नट आय परोयकर चैतन्यरूपी आत्माके गरेमें डारता है, जब वासनारूपी तागा टूटी पड्या तब सब भ्रम भी निवृत्त होय जावेगा. हे मुनीश्वर! इसकूं भोगकी इच्छाहै सो बंधनका कारण है, भोगकी इच्छाकर भटकता है, शांतिको प्राप्त नहीं होता, तातें मुझको किसी भोगकी इच्छा नहीं, न राजकी इच्छा है, न घरकी, न वनकी इच्छा है, न मरनेकर दुःख मानता हौं, न जीवनेकर सुख मानता हौं, किसी पदार्थका सुख नहीं, सुख जो होना सो आत्मज्ञानकर होता है, अन्यथा किसी पदार्थकर होता नहीं, जैसे सूर्यके उदय हुए विना अंधकारका नाश नहीं होता तैसे आत्मज्ञानविना संसारके दुःखका

नाश नहीं होता, तातें सोई उपाय मुझको कहो जिसकर मोहका नाश होवै, औ मैं सुखी होऊं. हे मुनीश्वर ! भोगको भुगतनहारा जो अहंकार है; सो मैंने त्याग दिया, फिर भोगकी इच्छा कैसे होवै? हे मुनीश्वर ! इस विषयरूप सर्पनें जिसका स्पर्श कियाहै, तिसका नाश हो जाता है, अरु सर्प जिसको काटता है, सो एक बेर मरता है, अरु विषयरूप सर्प जिसको काटता है सो अनेक जन्मपर्यंत मारताही चला जाताहै, तातें परम दुःखका कारण विषयभोग है; यातें बिपयरूपी परमाविष है. हे मुनीश्वर ! आरेके साथ अंगका काटना सहन होता है, अरु वज्रकरके शरीरका चूर्ण होना सो भी मैं सहुंगा, परंतु बिपयका भुगतना मेरेसों कैसेई सह्या नहीं जाता, यह मुझको दुःखदायक दृष्टिमें आता है, तातें सोई उपाय मुझको कहो, जिसकर मेरे हृदयतें अज्ञान-रूपी अंधकारक नाश होवै; अरु जो न कहोगे तो मैं मेरी छातीपर धैर्यरूपी शिला धरके बैठा रहौंगा परंतु भोगकी इच्छा न करौंगा.

हे मुनीश्वर ! जेते कछु पदार्थ हैं, सो सब नाशरूप हैं, जैसे बिजुरीका चमत्कार होय छिप जाता है, अरु अंजलिमें जल नहीं ठहरता, तैसेविषयभोगअरु आयुष्य नाश होय जाते हैं, ठहरते नहीं. जैसे कंठीकर मच्छी दुःख पाती है, तैसे भोगकी तृष्णाकर जीव दुःख पाते हैं, तातें मुझको किसी पदार्थकी इच्छा नहीं, जैसे किसीने

मरीचिकाके जलको सत्य जान सो जलपानकी इच्छा करी दौड्या सो जल पावत नहीं, तातें मैं किसी पदार्थ की इच्छा नहीं करता.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे सर्वातमतिपादनं नाम चतुर्विंशतितमः सर्गः ॥ २४ ॥

पंचविंशतितमः सर्गः २५

अथ वैराग्यप्रयोजनवर्णनम् ।

श्रीराम उवाच—हे मुनीश्वर ! संसाररूपी गर्ड- त्तामें अरु मोहरूपी कीच मूर्खका मन गिर जाता है; तिसकर पड्या दुःख पावता है, शांतिवान कबहु नहीं होता; जब जरा अवस्था आती है, तब सर्व शरीर जर्ज- रीभूत होकर कांपने लगता है, जैसे यतन वृक्षके पत्र पवनकर हिलते हैं, तैसे जरा अवस्थाकर अंग हिलते हैं; अरु तृष्णा वृद्धि हो जाती है, जैसे नीमका वृक्ष ज्यों ज्यों वृद्ध होता है त्यों त्यों कटुता बढती है, तैसे तृष्णा बढती है.

हे मुनीश्वर ! जिस पुरुषने देह, इंद्रिया दिकनका आश्रय अपने सुखनिमित्त लिया है, सो मूर्ख संसार रूपी अँधकूपमें गिरता है, निकस नहीं शकता, अरु अज्ञानीका चित्त भोगका त्याग कदाचित् नहीं करता

है. हे मुनीश्वर ! जगतके पदार्थमें मेरी बुद्धि मलिन हो गई है. जैसे वर्षाकालमें नदी मलिन होती है, जैसे मार्गशिर मासमें मंजरी सूकी जाती है, तैसे जगतकी शोभा देखत देखत विरस हो जाती है, जैसे जगतका पदार्थ मूर्खको रमणीय भासता है,जैसे पानीका गडेला तृणकरि आच्छादित होता है, अरु मृगका बालक तिस तृणको रमणीय जान कर खाने जाता है, फिर गिर जाता है, तैसे यह मूर्ख भोगको रमणीय जानी भुगतके गिर परे हैं, फिर महादुःख पाते हैं, जैसे मृग गडेलापर उडता है,सो सुखी नहीं होता, तैसे यह संसारके पदार्थ गडेलेरूप हैं,इन उपर मनरूपी मृग दौडनहारा कैसे सुखी होवै ?

हे मुनीश्वर ! जगतके पदार्थसोंकर मेरी बुद्धि चंचल हो गई है, तातें सोई उपाय कहो, जिसकर पर्वतकी नांई मेरी बुद्धि निश्चल होवै,सो पद कैसा है, जो परमानंदके यत्नमें रहता है, अरु निर्भय, निराकार पद, जिसके पायेतें संसार कछु भी नहीं रहता है, बहुरि पावना कछु नहीं रहता है,तैसे संपूर्ण जगतकी नानाप्रकारकी रचना सब दब जाती है, जिस पद पावनेका उपाय मुझको कहो. हे मुनीश्वर ! ऐसे पदतें मेरी बुद्धि शून्य है, तातें मैं शांतिवान नहीं होता,यह संसारअरु संसारके कर्म मोहरूप है, इसमें पड़ेहुए शांतिको प्राप्त नहीं होते अरु !

जनकादिक संसारमें रहेहुए कमलकी नाईं निर्लेप रहते हैं, शांतिवान संसारमें निर्लेप रहतेहैं, सो जैसे कोउ कीचसों पूर्ण होय.अरु कहै जो मुझको कीचका परश नहीं हुआ,जैसे राजके विक्षेपरूपी कीचमें परेहुए शांतिवान् कैसे निर्लेप रहे हैं, तिसकी समुझ कहाहै, सो कृपाकर कहौ, अरु तुम जैसे जो संत जनहैं, सो विषयको भुगतते दृष्ट आतेहैं,अरु जगत्की चेष्टासब करते हैं; सो निर्लेप कैसे रहतेहैं। सो युक्ति कहौ, जैसे तुम जलकमलवत् रहतेहो सो कहौ; यह बुद्धितो मोहकरि मोही जातीहै,जैसे तालमें हस्ती प्रवेश करता है, औ पानी मलिन होजाताहै, तैसे मोहकरि बुद्धि मलिन होय जातीहै, तातें सोई उपाय कहौ, जिसकर बुद्धि निर्मल होवै, यह संतोषमें बुद्धि स्थिर कबहुनहीं रहती, जैसे मूलसो कुहारेकर कट्या वृक्ष स्थिर नहीं होता, तैसे वासनासों कटी बुद्धि स्थिर नहीं रहती, हे मुनीश्वर ! संसाररूपी विषूचिका मुझकों लगीहै,तातें सोई उपाय कहौ, जिसकर द्रश्यका होवै, इसनैं मुझको बड़ा दुःख दिया है,अरु आत्मज्ञान कबप्रकाश होय जिसके उदय हुएमोहरूपी अंधकारका नाशहोवै हे मुनीश्वर ! जैसे बादरसों चंद्रमा आच्छादित होय जाताहै,तैसे बुद्धिकी मलिनताकर मैं आच्छादितहुआ हौं,तातें सोई उपाय कहौ जिसकर आवरण दूर होवै, अरुजो आत्मानंद है सो नित्य है, जिसके पायेतेंबहुरि

पावना कछु नहीं रहता,इसतें संपूर्णदुःख नष्ट होजाते हैं, अरु अंतर शीतल सो जाता है, ऐसा जो पद है तिसकी प्राप्तिका उपाय मुझको कहो, हेमुनीश्वर!आत्मज्ञानरूपी चंद्रमाकीमुझकोइच्छा है,जिसकेप्रकाशकर बुद्धिरूपी कमलनी खिलीआतीहै, अरुजिसकी अमृतरूपी किरणकर तृप्तवृत्ति होती है सो कहो, हे मुनीश्वर अब मुझको गृहमें रहनेकी इच्छा नहीं,अरु वनविषेजानेकी भी इच्छा नहीं, मुझको तो इसी पदकी इच्छाहै, जिस पायेतें भीतर शांति होय जाय।

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे वैराग्यप्रयोजनवर्णनं नाम एकविंशतितम सर्गः॥ २५॥

षड्विंशतितमः सर्गः २६

अथ आयुष्यत्याग वर्णनं।

श्रीराम उवाच-हे मुनीश्वर! जो जीवने की आस्था करते हैं,सो मूर्खहैं,जैसे पत्रपर जलकी बूंद ठहरती नहीं तैसे आयुष्यहु क्षणभंगुरहै, जैसे वर्षाकालमें दर्दुर बोलतेहैं, तब उनका कंठ चंचल सदा फिरकता रहता है, तैसे आवरदा क्षणक्षणमें चंचल होजाती है, जैसे शिवजीके कपालमें चंद्रमाकी रेषा कछुसीहै, तैसायह शरीरहै, हे मुनीश्वर। जिसको इसमें आस्था है, सो

महामूर्षहै,यहतो कालका ग्रासहै;जैसे बिल्ली चुहेको पकर लेती है, तैसे सबको काल पकर लेता है. जैसे बिल्लीचुहेको संभाल करने नहीं देती,जैसे सबकोकाल अचानक ग्रहण करलेता है,अरु किसी को भासतानहीं

हे मुनीश्वर ! जब अज्ञानरूपी मेघ आय गरजताहै तब लोभरूपी मोर प्रसन्न होयके नृत्य करते हैं,जब अज्ञानरूपी मेघ वर्षा करताहै, तब दुःखरूपी मंजरी होय नष्ट हो जातीहै, अरु तृष्णारूपी जालमें फसे हुए जीवरूपी पक्षी परे दुःख पाते हैं, शांतिकी प्राप्ति नहीं होती ।

हे मुनीश्वर ! यह जगतरूपी बडा रोग लग्याहै; तिसका निवारण करनेका कौनसा पदार्थहै?जोपाव- नेको योग्य है, जिसकर भ्रमरूपी रोग निवृत्त होवै सोई उपाय कहो,यह जगत मूर्खको रमणीय दिखता है,ऐसे पदार्थ पृथ्वीपर,अरु आकाशमें;अरु देवलोक में अरु पातालमें कोउ नहीं जो ज्ञानवान्को रमणीय दिखे,ज्ञानवानको सब भ्रमरूप भासताहै;अरु अज्ञानी जगतमें आस्थाकरताहै, हेमुनीश्वर!चंद्रमामेंजो कलंक है,तिसकर शोभा सुंदर नहीं लगती, जब कलंक दूर होयजाय, तब सुंदर लगे, तैसे मेरोचित्तरूपी चंद्रमा में कामरूपी कलंक लग्या है, तिसकर उज्जवल नहीं भासता,वातेंसोई उपाय कहो;जिसकर कलंक दूरहोजाय

हे मुनीश्वर । यह चित्त बहुत चंचल है,स्थिर कदा-

चित नहीं होता,जैसे अग्निमें डार दिया पारा उडजाता है,तैसे चित्त भी स्थिर नहीं होता; विषयकी तरफ सदा धावता है,तातें सोई उपाय कहौ जिसकरि चित्त स्थिर होवै. औ संसाररूपी वनमें भोगरूपी सर्प रहते हैं, सो जीवको दंश करतेहैं, तिनसों बचनेका उपाय कहौ, अरु जेती कछु क्रियाहैं,सोरागद्वेषके साथ मिली हुईहैं,तातें सोई उपाय कहौ तिसकर रागद्वेषका प्रवेश न होवै, जैसे समुद्रमें पत्रहोय, अरु जलका स्पर्श न होय, तैसे यह संसारमेंहै,तिसको तृष्णारूपी जलका स्पर्श न होय, ऐसा उपाय कहौ; जिसकर इसको राग द्वेषका स्पर्श न होय, अरु मनमें जो मननरूपीसत्ता है,सो युक्तिसोंकर दूर होतीहै,अन्यथा दूर नहीं होती, सो निवृत्तिके अर्थ आप मेरेको युक्ति कहौ, औआगे जिसको जिस प्रकार निवृत्ति हुई है,सो कहौ,अरुजिस प्रकार तुमारे अंतरमें शीतलता हुई है, सो कहौ, हे मुनीश्वर ! जैसेतुम जानते हौ सो कहौ,अरुजोतुमारे विद्यमान वह युक्ति नहीं पाई, तब मैंतो कछु नहीं जानता, तो मैं सब त्यागकर निरहंकार होय रहौंगा, जबलग वह युक्ति मुझको न प्राप्त होवैगी तबलगमैं भोजननहीं करौंगा,अरु जलपानभी नहीं करौंगाअरु स्नानादिक क्रिया भी नहीं करौंगा.संपदाकार्यभीनहीं करौंगा, औ आपदा कार्य भी नहीं करौंगा, निरहंकार होऊंगा, औ ये न मेरा देह है, औ न मैं देह हौं, सब

त्याग करके बैठा रहौंगा, जैसे कागदके ऊपर मूर्ति चित्रित होतीहै, तैसे होय रहौंगा; श्वास आवते जाते आपहीं क्षीण होय जायेंगे; जैसे तेलबिना दीपक बूझताहै तैसे अनर्थरहित देह निर्वाण होय जायगा, तब महाशांतिको प्राप्त होऊंगा।

वाल्मीक उवाच—हे भारद्वाज! ऐसे कहीकरि रामजी चुप होय रहे, जैसे बडे मेघको देखके मोर शब्द करके चुप होजाताहै।

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्य प्रकरणे अनन्यत्यागदर्शनं नाम षड्विंशतितमः सर्गः ॥ २६ ॥

सप्तविंशतितमः सर्गः २७

अथ देवसमाज वर्णनं ।

वाल्मीक उवाच—हे पुत्र! जब इस प्रकार रघुवंशरूपी आकाशके रामचंद्ररूपी चंद्रमा बोले, तब सबही मौन होगये; अरु सबके नयन खडे होगये; मानो रोमहु खडे होकर रामजीके बचन सुनते हैं! अरु जेते कछु सभामें बैठे थे, सो सब निर्वासनारूपी अमृतके समुद्रमें मग्न होगये, वसिष्ट, वामदेव, विश्वामित्र, आदिजो मुनीश्वरथे, और जेते दृष्टि आदिकजो मंत्रीथे, औरराजा दशरथ अरु जेते मंडलेश्वरथे, और जेते चाकर नौकर

थे, और माता कौसल्या आदिक सब मौन होगये,अर्थ यहजो अचल होगयेहैं; अरु पिंजरेमें जो तोतेथे सो भीमौन होगये; अरु बगीचेमें पशुआदि थे, सो भी मौन होगये. अरु चारात्रण खात रही गये; अरु जो पक्षी आलयेंमें बैठेथे, सोभी सुनकर मौन हो गये; अरु आकाशके पक्षी जो निकटथे, सोभी स्थिर होगये अरु आकाश में देव,सिद्ध,गंधर्व, विद्याधर, किन्नरथे सोभी आय सुननेलगे फूलकी वर्षा करने लगे; सब धन्य धन्य शब्द करने लगे। औ फूलकी वर्षाभई.सो मानौ बरफकी बर्षा होतीहै. अरु क्षीर समुद्रके तरंग उछलते आते होय, अरु मानौ मोती की मालाकी वृष्टि आवत होय,औ जैसे माखनके पिंड उडते होय, इस प्रकार आधी घडीपर्यंत फूलकी वर्षा भई.अरु बडी सुगंध आय पसरी. अरु फूलपर भौंरे फिरने लगे।औ बड़ा बिलास तिस कालमें हो रहा,अरु नमोनमः शब्द करने लगे।

देव उवाच—हे कमलनयन रघुवंशी !आकाशमें चंद्रमारूप आप रामजी। तुम धन्य हो। तुमने बड़े श्रेष्ठ स्थान देखेहैं, अरु बहुत प्रकारके वचन सुने हैं यातें जैसे आप बचन कहेहैं, ऐसे बचन कबहु नहीं सुने,यह बचन सुनके हमारा जो देवताका अभिमान था; सो सब निवृत्त भयाहै,अमृतरूपी बचन सुनकर हमारी बुद्धि पूर्ण होगईहै; हे रामजी। जैसे बचन

तुमने कहेहैं, ऐसे वचन बृहस्पतीहु कहेनेको समर्थ नहीं, तुमारे वचन परमानन्दके करनहारेहैं, तातेंतुम धन्य हो ।

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे देवसिद्धसमाज वर्णनं नाम सप्तविंशतितमः सर्गः ॥२७

अष्टविंशतितमः सर्गः २८

अथ मुनिसमाज वर्णनं ।

वाल्मीक उवाच–हे भारद्वाज। ऐसे वचन सिद्ध कहीके विचार करत भये, रघुवंशका कुल पूजेव योग्य है;तिसमें रामजीनें बड़े उदार वचन मुनीश्वरके विद्यमान कहेहैं, अब जो मुनीश्वरका उत्तर होयगा, सो भी श्रवण किया चाहिये, जैसे फूलके उपरभौंरे स्थिरहोतेहैं, तैसेव्यास, नारद, पुलह, पुलस्य, आदि सब साधु सभामें स्थित भये, तब वसिष्ठ विश्वामित्र आदिमुनीश्वर उठके खडेहुए;अरु तिनकी पूजा करनेलगे प्रथम पूजाराजा दशरथनें करी;फिर, नानाप्रकारसों सबने वाकी पूजा करी, औयथायोग्य आसनके उपर बैठे,सो कैसेहैं, जो नारद बहुत सुंदर मूर्तिवारे हाथमें वीना लेयके बैठे ,अरु श्याम मूर्तिव्यासजी आय बैठे ,औ

नानाप्रकारके रंगसेंरंजित वस्त्र पहिरे हुए मानौंतारामें महाश्याम घटा आईहै ऐसे, अरु दुर्वासा, वामदेव, पुलह; पुलस्त्य, अरु ब्रहस्पतिके पिता अंगरा, अरु भृगु औ मैंहु तहां था, औ ब्रह्मर्षि, राजर्षि; देवर्षि, देवता, मुनीश्वर सब आयके सभामैं स्थित हुए, किसीकोबडी जटाहै, कोईनें मुगुट पहरे हैं, किसीनें रुद्राक्षकीमाला पेहेरि हैं, किसीनें मोतीकी माला पेहरी है, किसीके कंठमें रत्नकी मालाहै, औ हाथमें कमंडल, मृगछाला किसीके महासुन्दर वस्त्र. किसीकी कटिपैं कौपीनाकिसीकी कटि पैं सुवर्णकी जंजीर ऐसे बड़े तपस्वी आयके बैठे, तामें केउ राजसी स्वभावके, केउ सात्विक स्वभावके, ऐसे बडे बड़े आये, अरु सब विद्वत् वेद पढनहारे प्राप्त हुए; औ किसीका सूर्यवत, किसीका चंद्रमावत् किसीका तारावत, किसीका रत्नवत, तेजथा ऐसे वड़े प्रकाशवारे पुरुषार्थपर यत्न करनेहारे; सो यथायोग्य आसनपैं स्थिर भये, औ मोहनी मूर्ति रामजी दीन स्वभाववारे हाथ जोरके सभामें बैठे, तिसकी सब पूजा करत भये; कहत हैं जो हे रामजी ! तुम धन्यहो ? औ.

नारद सबके विद्यमान कहत भये; जो हे रामजी ! तुमनें बड़े विवेक अरु वैराग्यके बचन कहे, सो सबको प्यारे लगे, सबके कल्याण करनेहारे हैं, औ परमबोधके कारणहैं; हेरामजी ! तुम बड़े बुद्धिवान उदारात्मा दृष्टि आवते हो; अरु महावाक्यका अर्थ तुमसें प्रकट

होताहै, ऐसा उज्ज्वल पात्र साधुमें औअनंत तपसीमें कोउक होते हैं; अरु जेते कछु मनुष्यहैं. सो सव पशु जैसे दृष्टिमें आवते हैं. क्यों जोजिसको संसारसमुद्रके पार होनेकी इच्छाहै औ जो पुरुषार्थ पर यत्न करते हैं, सोई मनुष्य है, साधो ! वृक्षतौ वहुत होते हैं, परंतु चंदनका वृक्षकोउ होता है,तैसे शरीरधारी वहुत हैं,परंतु ऐसा कोउ होताहै,औसब अस्थि मांस, रुधिरके पुतले साथ मिले हुए भटकते फिरतेहैं, सो जैसी यंत्रकी पूतरी होती है,तैसे अज्ञानी जीवहैं, औहस्ती तौवहुतहैं, परंतु जिसके मस्तकमेंतें मोती निकसता है सोविरलाहै,तैसे मनुष्य तो वहुतहैं;परन्तु पुरुषार्थपर यत्न करनेहारे कोउ होतेहैं; जैसें वृक्ष वहुतेरे हैं परंतु लवंगका वृक्ष कोउ होताहै, तैसे मनुष्य वहुतहैं परंतु ऐसा कोई विरला होताहै,ऐसे पात्रको थोराअर्थ कहाभी वहुत होजाता है, जैसे तेलकी बूंद थोरी जलमें डारी विस्तारको पावतीहै, तैसे थोरे वचनजो आपके हियेमें वहुत होतेहैं,आपकी बुद्धि वहुतविशेष है, अरु दीपक जैसी प्रकाशवारी है,अरु वोधकापरम पात्र है, औ कहने मात्रतें आपको शीघ्रज्ञान होवैगा अरुजो हम सव वैठे हैं सो हमारे विद्यमान आपको ज्ञान न होवैगा तव जानना जो हम सवं मूर्ख वैठे हैं

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे मुनि समाज वर्णनं नाम अष्टाविंशतितमः सर्गः ॥२८

समाप्तमिदं योगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणम् ॥१॥

श्रीपरमात्मने नमः ।

अथ श्रीयोगवासिष्ठ ।

मुमुक्षुप्रकरण प्रारम्भः

प्रथमः सर्गः १

अथ शुकनिर्वाण वर्णन.

वाल्मीक उवाच—हे साधो ! यह जो वचनहैं, सो परमानन्दरूपहैं; अरु कल्याणके कर्ताहैं, इसमें श्रवणकी प्रीति तब उपजतीहै, जब अनेक जन्मकेवडे पुण्य आय इकठे होतेहैं; जैसे कल्पवृक्षके फलको बडे पुण्यसों पातेहैं तैसे जिसके बडे पुण्यकर्म इकट्ठेआय होते हैं, तिसकी प्रीति यह बचनके श्रवणमें होतीहै; अन्यथा प्रीति नहीं होती, यह बचन परम बोधके कारण हैं; वैराग्यप्रकरणके एक सहस्र पांचसौ श्लोक हैं, हे भारद्वाज! इस प्रकार जब नारदजीनें कहा, तब विश्वामित्र बोले,

विश्वामित्र उवाच—हे ज्ञानवानमें श्रेष्ठ रामजी ! जेता कछु जानने योग्य था सो जान्या है । इसतें जानना और नहीं रह्या, अरु तिसमें विश्राम पावने निमित्त कछुक मार्जन करनाहै, जैसे अशुद्ध आदर्शकी

मलिनता दूर करी होय, तब मुख स्पष्ट भासताहै, तैसे कछु उपदेशकी तुझको अपेक्षा है, हे रामजी। तेरेजैसा भगवान् व्यासजीका पुत्र शुकदेवजी भया; सो भीबडा बुद्धिवान् था, तिसनें जो जानने योग्य था; सो जान्या, अरु विश्रामके निमित्त तिसको भी अपेक्षा थी, सो विश्रामको पायकर शांतिवान् भया है.

राम उवाच—हे भगवन्। शुकजी कैसा बुद्धिमान् अरु ज्ञानवान था, अरु विश्रामकी अपेक्षा तिसको थी, फिर कैसे विश्रामको पावत भया, सो कृपा करिके कहो,

विश्वामित्र उवाच—हे रामजी। अंजन के पर्वतकी नांई जिसका आकार है, ऐसे जो भगवान् व्यासजीसो स्वर्णके सिंहासनपर राजा दशरथ के पास यहां बैठा है. अरु सूर्यकी नांई प्रकाशवान जिसकी कांतिहै, तिसका पुत्र शुकजी था, सो सब शास्त्रका वेत्ताथा; सत्य कोसत्य जानता था, असत्य को असत्य जानता था, सो शांतिरूप, औ परमानन्दरूप आत्मा में विश्राम न पावत भया. तब उसको बिकल्प उठ्या जो जिसको मैंजान्या है, सो न होवैगा, काहेते जो मुझको आनन्द नहीं भासता, सो संशय को धरके एक कालमें व्यासजी सुमेरु पर्वतकी कंदरामें बैठे थे; तिनके निकट आयकर कहत भया, हे भगवन्! यह संसार सब भ्रमात्मक कहांसे भया है, ताकी निवृत्ती कैसे होयगी, औआगे

कोईको इसकी निवृत्ति भई है ! सो कहौ ।

हे रामजी । इस प्रकार जब शुकजीने कह्या,तबविद्वद्दशिरोमणि जो बेदव्यासजी हैं सो तत्काल उपदेश करत भये, तब शुकजीनें कह्या, हे भगवन् ! जो कुछ तुम कहो हौ सो तो मैं आगेसों जानता हौं, इसकर मुझको शांति प्राप्त नहीं होती ।

हे रामजी ! जब इसप्रकार शुकजीनें कह्या,तब सर्वज्ञ जो वेदव्यासजी हैं सो बिचार करत भये, जोमेरेबचन कर इसको शांति प्राप्त न होवैगी. क्यों जो इसको अब पितापुत्रका संबंध भासताहै,ऐसे विचारकरके व्यासजी कहत भये,हे पुत्र ! मैं सर्वतत्त्वज्ञ नहीं, तूं राजा जनक के निकट जा, सो सर्वतत्त्वज्ञ है, अरु शांतात्मा है, उनसों तेरा मोह निवृत्त होवैगा ।

हे रामजी । जब इस प्रकार व्यासजीनें कह्या तब शुकदेवजी उहांसों चले, तब जो मिथिला नगरी राजा जनककी थी, तिसमें आयकर राजा जनककेद्वारपैस्थित भये,तब ज्येष्ठीनेंजायकरजनकको कह्या,जोव्यासजीके पुत्र शुकजी आय खडे हैं तब राजानेंजान्या जोइसको जिज्ञासा है; तब कह्या खडा रहो; तब खडेही रहे, इसी प्रकार ज्येष्ठीनें जाय कह्या, तब सात दिन खडे रहत वीत गये, तब राजानें फेर पूछा जो शुकजी खडे हैं? कै चलते रहे हैं ? तब ज्येष्ठीनेंकहा खडे हैं,तबराजानें कहा आगे ले आओ,तब आगे ले आये,उसदरवज्जेपै

थी सात दिन खडे रहे, बहुरि राजानें पूछया, जो शुकजी है? तब ज्येष्ठीनें कहा जो खडे हैं, तव राजानें कहा अंतःपुरमें ले आओ, उसको नानाप्रकारके भोग भुगताओ. तब अन्तःपुरमें लेगये, उहां स्त्रियनकेपास सात दिन खडे रहे, तव राजानें ज्येष्ठीकोपूछया, जो तिसकी दशा कैसी है, औ आगे कहा दशा थी? तब ज्येष्ठीनें कहा जो आगेनिरादर करकेन शोकवान हुआथा, अरु अब भोगकर न प्रसन्न हुआ है, इष्ट अनिष्टमेंसमानहै, जैसे मंद पवनकरके मेरु चलायमान नहीं होवै, तैसेयह वडा भोगके आदरकर चलायमान नहीं भये, जैसेपपैयेको मेघके जलविनानदी, ताल आदिकेजलकीइच्छा नहीं, तब राजानें कहा, इहांले आओ, तब सोलेआयें, जब शुकजी आयेतबराजाजनकउठके खडे होयप्रणाम किया, फिर दोउ बैठ गये, तब राजानें कहा जोहेमुनीश्वर! तुम किस निमित्त आये हो तुमको कहावांछाहै, सो कहो, तिसकी प्राप्ति मैं कर देहु.

श्रीशुक उवाच—हे गुरु! यह संसारका आडंबर कैसे उत्पन्न हुआ है, फिर कैसे शांत होवैगा, सोतुम कहो।

विश्वामित्र उवाच—हे रामजी! जब इस प्रकार शुकदेवजीने कहा, तब राजा जनकनें यथाशास्त्रउपदेश जोकछु व्यासजीनेंकहा था; सोई कहा, बहुरिशुकजीनें कहा, हे भगवन्, जो कछु तुम कहो हो, सोई मेरा

पिताजी कहता था; अरु सोई शास्त्र कहते है, औ विचारसों मैं हूं ऐसा जानताहौं. सोयह संसार अपने चित्तमें उत्पन्न होता है, अरु चित्तका निर्वेद हुये भ्रम कीनिवृत्ति होती है, फिर विश्राम मुझको नहीं प्राप्त होता है।

जनक उवाच—हे मुनीश्वर। जो कछु मैंनें कहा है, अरु जो तुम जानते हो; इसतें अवर उपाय कछु है ऐसा जानना नहीं, अरु कहनाभी नहीं; यह संसार चित्त के संवेदनकर हुआहै, जब चित्त फुरनेतें रहित होताहै तब भ्रम निवृत होजाताहै, अरु आत्मतत्व नित्यशुद्धहै, अरु परमानन्द स्वरूप है, केवल चैतन्यहै, तिसको अभ्यास करैगा, तब तूं विश्रामको पावैगा, अरु तूं मुक्त स्वरूप है, काहेतें जो तेरायत्न आत्माकीओर है, दृश्यकी ओर नहीं, तातें तूं बड़ा उदारात्माहै, हे मुनीश्वर तूं मोको व्यासतें अधिक ज्ञान मेरे पासआया है, औ तूं मेरे तें भी अधिकहै, काहेतें जो हमारीचेष्टा बाहिरतें दृष्ट आवतीहै, औ तेरीचेष्टा बाहिरतें कछुभी नहीं अरु अंतरतें हमारी इच्छाभी नहीं।

विश्वामित्र उवाच—हे रामजी। जबइस प्रकार राजा जनकनें कहा, तब शुकजी निःसंग; निःप्रयत्न निर्भय होकेरचले, सुमेरुपर्वतकी कंदरामें जायनिर्विकल्पसमाधि दशसहस्र वर्ष तांई करी; बहुरि निर्वाण होगये, जैसे तेलविना दीपक निर्वाण होजाताहै, तैसे

निर्वाण होगये. जैसे समुद्रमें बूंद लीन होजाती है जैसे सूर्यका प्रकाश संध्याकालमें सूर्यके पास लीनहो जाताहै तैसे कलनारूप कलंकको त्यागकर ब्रह्मपद को प्राप्त भये ।

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे शुकनिर्वाण वर्णन नाम प्रथम सर्ग ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः २

अथ विश्वामित्रोपदेश वर्णन

विश्वामित्र उवाच—हे राजा दशरथ! जैसे शुकजी शुद्धबुद्धिवालेथे तैसे रामजी भी हैं; जैसे शांति के निमित्त उसको कछु मार्जना कर्तव्य था, तैसे रामजीको विश्रामके निमित्त कछुक मार्जन चाहिये, काहेतें जो आवरण करनहारे भोग हैं, तिनकी इच्छा निवृत्त भईहै, अरुजो कछु जानने योग्य था, सो जान्या है; अबहमारे कछुक युक्तिकरनीहै, तिसकरकेउसकोविश्रामहोवैगा, जैसे शुकजीको थोडेसे मार्जन करके शांतिकीप्राप्तिभई थी, तैसे इनको भी होवैगा ।

हे राजन ! अब रामजीको भोगकी इच्छा स्पर्शनहीं करती. जैसेज्ञानवानको आध्यात्मिक आदि दुःखस्पर्श

नहीं करते तैसे रामजीको भोगकी इच्छा स्पर्श नहीं करती, भोगकी इच्छा सबको दीन करती है,इसकाई नाम बंधनहै, जब भोगकी वासनाका क्षय करना,इस काई नाम मोक्ष है; ज्यों ज्यों भोगकी इच्छा करताहै, त्यों त्यों लघुहो जाताहै,अरुज्यों ज्यो भोगकीवासना क्षय होती है, त्यों त्यों गरिष्ठ होताहै;जबलग इसको आत्मानंद प्रकाश नहीं होतातबलग विषयकी वासना दूर नहीं होती; जब आत्मानंद पास होता है तब विषयवासना कोउ नहीं रहती; जैसे मरुस्थलमें वल्ली उत्पन्न नहीं होती; तैसे ज्ञानवानको विषयवासनाकी उत्पत्ति नहीं होती ।

हे साधो ! ज्ञानवान् जोविषयभोगका त्याग करता है, सो किसी फलकी इच्छा करके नहीं करता स्वभावतेंई ज्ञानवान्की विषयवासना चलती रहती है; जैसे सूर्यके उदय हुए अंधकारका अभाव होजाताहै; तैसे रामजीको अब किसी भोगपदार्थकी इच्छा रही नहीं; अब विदितवेद हुआहै; अब आप विश्रामकी इच्छा चाहताहै, तातें जो कहौं, सोई करो. जिसकर विश्रामवान् होय ।

हे राजन् ! यहजो भगवान् वसिष्ठजीहैं, इनकीयुक्ति करके शांत होवेगा, अरु आगेभी सोई रघुवंशकुलके गुरुहैं, इनके उपदेशद्वारा आगेभी रघुवंशी ज्ञानवान् भयहैं जो सर्वज्ञहै, अरु साक्षिरूप हैं, औ त्रिकालज्ञ

हैं,औ ज्ञानके सूर्यहैं, इनके उपदेश कर रामजी आत्मपदको प्राप्त होवैगा ।

हेवसिष्ठजी ! वह ब्रह्माका उपदेश तुमारे स्मरणमें है, क्यों जो जब तुमारा हमारा विरोध हुआथा तब उपदेश किया, औ जो सब ऋषीश्वर अरु वृक्षकरि पूर्णहै ऐसा जोमंदराचल पर्वतमें आयकर ब्रह्माजीनेंसंसारवासनाके नाशनिमित्त उपदेशकियाथा,अरुतुमाराहमारा विरोधथा,तिसके निमित्तअरु और जीवके कल्याणनिमित्त जो उपदेश किया था; अब यही उपदेश तुमरामजीको करो, यहभी निर्मल ज्ञानपत्र है, अरु ज्ञानभी वही है, अरु विज्ञानभी वही है,अरु निर्मल युक्ति वही है, जो शुद्धपात्रमें अर्पण होवै, अरु पात्रबिना उपदेश नहीं सुहात है, अरु जिसमें शिष्यभाव न होवै, अरु विरक्तता न होवै, ऐसा जो अपात्र मूर्ख होवै, तिसको उपदेश करना व्यर्थ, अरु जो विरक्त होवै, अरु शिष्यभावना न होवै. तब भी उपदेश नहींकरना अरु दोनोंकरिसम्पन्न होवै.तब करना,पात्रबिनाउपदेश व्यर्थ होताहै, अर्थ यह जो अपवित्र होजाता है, जैसे गौका दूध महापवित्र है, अरु श्वानकी त्वचामें डारिये तब वह अपवित्र होजाताहै, तैसे अपात्रको उपदेश करना व्यर्थहै,हेमुनीश्वर ! जो शिष्य वैराग्यकरिसंपन्न होताहै, अरु उदार आत्मा है, सो तुमारे उपदेश के योग्य है, अरु तुम कैसे हो, जो वीतराग हो,भय अरु

क्रोधतें रहित हो परम शांतिरूप हो, सो तुमारे उपदेशका पात्र रामजी है ।

वाल्मीक उवाच—इस प्रकार जब विश्वामित्रने कहा, तब नारद अरु व्यासादिकननें साधु! साधु! करके कहा. अर्थ यह जो भला! भला! कहा, ऐसेही यथार्थ है, तब राजा दशरथके पास बड़े प्रकारके साधु बैठे हुए थे ।

वसिष्ठ उवाच—ब्रह्माजीके पुत्र वसिष्ठजीनें तिनको कहा जो, हे मुनीश्वर! जो कछु तुमनें आज्ञा करीहै, सो हमनें मानीहै, ऐसा समर्थ कोउ नहीं, जो संतकी आज्ञा निवारण करै, हे साधु । जेते कछु राजा दशरथकेपुत्र हैं, तिन सबके हृदयमें जो अज्ञानरूपी तमहै, सो मैं ज्ञानरूपी सूर्यकर निवारण करौंगा, जैसे सूर्यकेप्रकाश कर अंधकार दूर होताहै, हे मुनीश्वर। जो कछु ब्रह्माजीनें उपदेश कियाथा, सो मुझको अखंड स्मरणहै, सोई उपदेश करौंगा, जिसकर रामजी निःसंशयपदको प्राप्त होवैगा ।

वाल्मीक उवाच—इस प्रकार वसिष्ठजीनें विश्वामित्रको कहा, ताके अनंतर, मोक्षका उपाय सब रामजीको कहत भया ।

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे विश्वामित्रोपदेशोनाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः ३

अथ असंख्यसृष्टिप्रतिपादन वर्णनं ।

वसिष्ठ उवाच—हेरामजी । जो कछु कमलज जो ब्रह्माजी तिननें मुझकोजीवकेकल्याणनिमित्तउपदेश कियाहै,सो भले प्रकार मेरे स्मरणमें आताहै, सो अब तुझको कहता हौं ।

श्रीराम उवाच—हे भगवन् । कछुक प्रश्न करनेका अवसर आया है, अब एक संशयको दूर करो,मोक्ष उपाय जो संहिता कहते हौ, सो सब तुम कहोगे,परंतु यहजो तुमनें कहा,जो शुकदेवजी विदेह मुक्तहो गये, तौ भगवान व्यासजी जो सर्वज्ञहैं,सो विदेहमुक्त क्यों न हुवे ?

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी । जैसे सूर्यके किरणसों त्रसरेणु उडत दीख परती हैं, तिनकी संख्या कछु नहीं होती, तैसे परम सूर्यके संवेदनरूपी किरणमें त्रिलोकीरूपी त्रसरेणुहैं, सो असंख्यहैं, औ अनंत होकरमिट जातेहैं,अरु और अनंत होते हैं,अनंत त्रिलोकी ब्रह्मसमुद्रमें होवेंगी,तिसकी संख्या कछु नहीं ।

श्रीराम उवाच हे भगवन् । जो आगे व्यतीत हो गयेहैं,और आगे जो होवेंगे,तिनकी संख्या केती है? अरु वर्तमानको तौ जानता हौं ।

वशिष्ठ उवाच—हे रामजी ! अनंत कोटि त्रिलोकीके गण उपजे हैं, अरु मिट गये हैं, अरु केई होवे हैं अरु केई होवेंगे, गिननेकी संख्या कछु नहीं, काहेतें जो जीव असंख्य हैं; अरु जीवजीवप्रति अपनी अपनी सृष्टि है; जब यह जीव मृतक हो जाते हैं, तब उसी स्थान में अपने अंतवाहक संकल्परूपी पुरीविषे इसका वंध भास आता है; अरु इसी स्थान में परलोक भास आता है, पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाश, पंचभूत भासते हैं; अरु नानाप्रकारकी वासनाके अनुसार अपनी अपनी सृष्टि भास आती है; बहुरि जब उहांतें मृतक होता है, तब उही सृष्टि भास आती है, नामरूपसंयुक्त उही जाग्रत सत्य होकर भास आती है, बहुरि जब उहांतें मरता है, तब इस पंचमभूतसृष्टिका अभाव हो जाता है, औ अवर भासती है, अरु तहांके जो जीव होते हैं, तिनको भी इसी प्रकार अनुभव होता है, इसी प्रकार एक एक जीवकी सृष्टि होती है, अरु मिट जाती है; तिसकी संख्या कछु नहीं, तब ब्रह्माकी सृष्टिकी संख्या कैसे होवे?

जैसे पुरुष फेरी लेता है, अरु तिसको सर्व पदार्थ भ्रमते दृष्ट आवते हैं अरु जैसे नौकामें बैठे हुये नदीतटके वृक्ष चलते दृष्ट आते हैं, जैसे नेत्रके दोषकर आकाशमें मोतीकी माला दृष्ट आती है, जैसे स्वप्नमें सृष्टि भासती है, तैसे जीवको भ्रम करके यह लोक परलोक भासते हैं, वास्तवतें जगत कछु उपजाई नहीं, एक अद्वैत परमा-

त्मतत्त्व अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे द्वैतभ्रम अविद्याकरिकैभासता है, जैसेबालककोअपनेपर छैयामें वैताल भासता है, अरु भयको पावता है, तैसे अज्ञानीको अपनी कल्पना जगतरूप होय भासती है।

हे रामजी! यह व्यासदेव बत्तीस बेर मेरे देखने में आया है, तिसमें दशतौएकआकाररूप हैं, अरु एकहीं जैसे क्रिया, अरु एकहीं जैसे निश्चय हुआ है, अरु अवर दश समानहीं सम हुवे हैं, अरु बारे विलक्षण आकार विलक्षणक्रिया चेष्टावाले हुवे हैं, जैसेसमुद्रमें तरंगहोते हैं, तामें केई सम अरु केई बिलक्षण उपजते हैं, तैसे व्यास हुवे हैं, अरु सम जो दश हुवे हैं, तिनमें दशमं व्यास यहीहै, अरु आगे भी अष्ट बेर यही होवैगा, बहुरि महाभारत कहैगा, बहुरि नौमी बेर ब्रह्मा होकर विदेहमुक्त होवैगा, अरु हम भी होवेंगे, अरु वाल्मीक भी होवैगा, भृगु भी होवैगा। अरु बृहस्पतिका पिता अंगिरा भी होवैगा, इत्यादिक अवर भी होवैंगे।

हे रामजी! एक सम होते हैं, एक बिलक्षण होते हैं, अरु मनुष्य, देवता, तिर्यगादिक जीव केई बेर समान होते हैं, केई बेर बिलक्षण होते हैं, केई जीव समान आकार आगे जैसे कुलक्रियासहित होते हैं, अरु केई संकल्पकर उडते फिरते हैं, आनां, जानां, जीना, मरना स्वप्नभ्रमकीनांई दिखता है, अरु वास्तवतें कोउन आता है, न जाता है, न मरता है, यह भ्रम अज्ञानसोंकर

पड़ा भासता है, बिचार कियेतें कछु निकसता नहीं, जैसे कदलीका स्तंभ देखनेमें बड़ा पुष्ट आता है, फिर खोद देखौ तौ सार कछु नहीं निकसता! तैसेजगदभ्रम अविचारतें सिद्ध है, बिचार कियेतें कछु भासता नहीं.

हे रामजी! जो पुरुष आत्मसत्तामें जग्या है,तिसको द्वैतभ्रम नहीं भासता है,उह आत्मदर्शी, सदा शांतात्मा परमानंदस्वरूप है, अरु सब कलनातें रहित है, ऐसे जीवन्मुक्तको कोई चलाय नहीं सकता,ऐसे जो व्यास-देवजी हैं,तिनको सदेहमुक्ति,अरु बिदेहमुक्तिकी कोउ कलना नहीं,सदा अद्वैतरूप है, हे रामजी ! जीवन्मु-क्तिको सर्वत्र सर्वात्मा पूर्ण भासताहै,अरु स्वस्वरूप है, स्वरूपसार शांतिरूप अमृतकरिपूर्ण है,अरु निर्वाणमें स्थित है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे असंख्यसृष्टिप्रति-पादनं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः ४

अथ पुरुषार्थोपक्रम वर्णनं ।

वासिष्ठ उवाच–हे रामजी! जीवन्मुक्ति अरु विदेह-मुक्तिमें भेद कछु नहीं,जैसे स्थिर जल है,तौ भी जल है,अरु तरंग फिरते हैं,तौ भी जल है,तैसे जीवन्मुक्ति

अरु विदेहमुक्तिमें भेद कछु नहीं, हे रामजी ! जीवन्मुक्ति अरु विदेहमुक्तिका अनुभवतुमको प्रत्यक्ष नहीं भासता, काहेतें जो स्वसंवेद्य है, अरु तिनमें जो भेद भासता है, सो असम्यग्दर्शीको भासता है, ज्ञानवानको भेद कछु नहीं भासता है, हे मननहारीविषे श्रेष्ठ रामजी ! जैसे वायु स्पंदरूप होता है तौभी वायु है, अरु निस्पंदरूप होताहै तौभी वायुहै, उसके वायेतें निश्चयविषे भेद कछु नहीं, पर अवर जीवकों स्पंद होतीहै, तौ भासती है, अरु, निस्पंद होती है, तौ नहीं भासती तैसे ज्ञानवान् पुरुषकों जीवन्मुक्ति अरु विदेहमुक्तिमें भेद कछु नहीं, उह सदा द्वैतकलनातें रहितहै; जब जीवको उसका शरीर भासताहै, तब जीवन्मुक्तिकहते हैं, जब शरीर अदृश्य होताहै, तब विदेहमुक्ति कहते है, अरु उसको दोई तुल्यहैं ।

हे रामजी ! अब प्रकृत प्रसंगको सुन, जोश्रवणका भूषण है, जो कछुसिद्ध होताहै, सोअपने पुरुषार्थकर सिद्ध होताहै. पुरुषार्थबिना सिद्धि कछु नहीं होता, और कहतेहैं जो दैव करैगा सो होवैगा, सो मूर्खता है, यह चंद्रमाहृदयको शीतल अरु उल्लासकर्ताभासता है, सो इसमें शीतलता पुरुषार्थकरि हुई है, हे रामजी जिस अर्थकी प्रार्थना करै, अरु यत्नकरै, अरु तिसमें फिरै नहीं तौ अबिस्मयकर जरूर पाता है ।

औ पुरुषप्रयत्न किसका नामहै, सो श्रवण कर;

संतजन अरु सत्यशास्त्रकेउपदेशरूप उपायकरितिसके अनुसार चित्तका विचरना होय सो पुरुषार्थयत्न है, तिसतें इतर जो चेष्टा करताहै, तिसका नाम उन्मत्त चेष्टा है, अरु जिसनिमित्त यत्न करताहै सोई पावता है,एक जीव था,सो पुरुषार्थ प्रयत्नकरता अपुनइंद्रकीपद वी पाई त्रिलोकीका पति होय सिंहासन पर आरूढ हुवा।

हे रामचन्द्र! आत्मतत्त्वमें जो चैतन्य असपंद, इस स्पन्दरूप होकर स्फुरताहै,सो अपने पुरुषार्थकरब्रह्माके पदको प्राप्त भया है, तातें देख, जिसको कुछ सिद्धता प्राप्त हुई ! सो अपने पुरुषार्थकर हुईहै; केवलचैतन्यजो आत्मतत्त्व है, तिसमें चित्तसंवेदन स्पंदरूप है; यह चैतन्यसंवेदन अपने पुरुषार्थकरकेगरुड़पर आरूढहोय विष्णुरूप होता है; अरु पुरुषोत्तम कहता है; अरुयह चैतन्यसंवेदन अपने पुरुषार्थकरके रुद्ररूप भयाहै.अरु अर्धांगमें पार्वतीको धरी रख्या है,अरुमस्तकमें चन्द्रमाको धर्‌या है, अरु नीलकंठ परमशांतिरूपहै, तातें जोकछु सिद्ध होता है सो पुरुषार्थकर होता है।

हे राजजी! पुरुषार्थ करके सुमेरु का चूर्ण किया चाहें, तौभी कर सकता है, जैसे पूर्व दिनमें दुष्कृत किया होय, अरु अगले दिनमें सुकृत करै तब दुष्कृत दूर हो जाता है; जो अपने हाथद्वारा चरणामृत भीले

नहीं शकता, सो पुरुषार्थ करै तो भी वही पृथ्वीखंडखंड करने को समर्थ होता है,

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे पुरुषार्थी पक्रमो नाम चतुर्थ चतुर्थ सर्ग: ॥४

पंचम: सर्ग: २५

अथ पुरुषार्थ वर्णनं ।

वासिष्ठउवाच—हे रामजी ! जो चित्तमें कछु वांछा करताहै, अरु शास्त्रके अनुसार पुरुषार्थ नहींकरता, सो सुखको न पावैगा. उसकीउन्मत्त चेष्टाहै, अरु पुरुषार्थ भी दो प्रकारका है, एक शास्त्रानुसारहै, एक शास्त्रविरुद्ध है, जोशास्त्रको त्यागि करिअपनीइच्छाके अनुसार विचरता है, सो सिद्धताको न पावैगा, अरु जो शास्त्रके अनुसार पुरुषार्थ करता है, तिसकरसो सिद्धताको प्राप्त होवैगा, अरु दुःखभी न होवैगा, जो अनुभवतें स्मरण होता है, अरु स्मरणतें अनुभव होता है; सो दोनों इसहीतें होते है, दैव तो कछु न हुवा है ।

हे रामजी ! अवर दैवकोउनहीं, इसका किया इसको प्राप्त होता है, परंतु जो बलिष्ठ होता है सो तिसकेअनुसार विचरता है, जो पूर्वके संस्कार बली होते हैं, तौ उसका जय होता है अरु जो विद्यमान पुरुषार्थ बली

होते हैं, तब उसको जीति लेते हैं. जैसे एक पुरुषके दो घेटे हैं अरु जो तिसका लडावता है, तौ दोनों विषेजो बली है तिसका जय होता है, परंतु दोनों उसकेहैंतैसे दोनों कर्म इसके हैं, जो पूर्व का संस्कार बली होताहै, तोई इसका जय होता है,

हे रामजी ! यह जो सत्संग करता है, अरु सच्छास्त्रहुको बिचारता है, बहुरि पक्षीकी नांई ससार वृक्षहुको ओर उडता है, तौ पूर्व का संस्कार बली है, तिस करि स्थिरहो नहीं, सकता, ऐसे जानीकरितैंनें पुरुषप्रयत्नका त्याग नहीं करनां; जो पूर्वके संस्कारतें अन्यथा नहीं होता, परंतु पूर्वका संस्कार बली भी होवे, परंतु जब सत्संग करै, अरु सच्छास्त्रहुका दृढ अभ्यास होवै, तौ पूर्वकेसंस्कारको पुरुषप्रयत्नकर जीत लेताहै, जैसे पूर्वके संस्कारमें दुष्कृत किया है, आगे सुकृत कियाहै, सो अगलेका अभाव हो जाता है; सो पुरुषप्रयन्त होताहै, सो पुरुषार्थ क्या है ? अरु तिसकर सिद्ध क्याहोताहैं। सो श्रवणकरके ज्ञानवान् जो संत हैं, अरुसच्छास्त्र जो ब्रह्मविद्या है, तिसकेअनुसार प्रयत्न करना तिसकानाम पुरुषार्थ है, अरु पुरुषार्थकरकें पावने योग्य आत्मा है. जिसकरि संसारसमुद्रका पार होवे.

हे रामजी ! जो कछु सिद्ध होता है, सो अपने पुरुषार्थ करि होता है; अरु देव कोऊ नहीं, अरु जो शास्त्रके अनुसार पुरुषार्थकोत्याग करिकहता जो जो कछुकरना

है सो देव करैगा, सो मनुष्यमें गर्दभहोतिसका संग न करना, उसकी संगति करनी सो दुःखका कारणहै, इस पुरुषको प्रथमतोयह कर्तव्यहै, जो अपने वर्णाश्रम विषे शुभआचारका ग्रहणकरना, अरु अशुभकात्यागकरना बहुरिसंतका संग, अरु सच्छास्त्रकाविचारना, औतिसके विचारकर अपने गुणदोषहुका विचार करना; जोदिन अरु रात्रमें मैं शुभ क्या करता हौं, अरु अशुभ क्या करता हौं, अगे शुद्ध अरुदोषहुकासाक्षीभूत होकर जो संतोष, धैर्य, वैराग्य, विचार, अभ्यास गुण हैं तिनको बढावना; अरु दोष विपरीत हैं, तिनका त्याग करना, जब ऐसे पुरुषार्थकूं, अंगीकार करैगा, तब परमानंदरूप आत्मतत्त्वकूं पावैगा.

तातें हे रामजी ! वनके घाएलहुएमृगकी नांई नहीं होना, जो घास, तृण, पातको रसीला जानके पन्या चुगता है; जैसे स्त्री, पुत्र, बांधव; धनादिक विषेमग्नहो रहना, सो नहीं होना; इनतें विरक्त होना. दंतहू साथ दंतहुको चबायकरि संसारसमुद्रको पार होनेका यत्न करना, अरु बलते बंधनको तोडीकरि निकसी जाना, जैसे केसरी सिंह बलकरके पिंजरमेंतें निकस जाताहै, तैसे निकस जाना, सोई पुरुषार्थ है।

हे रामजी ! जिसको कछु सिद्धताकी प्राप्ति हुई है सो अपने पुरुषार्थकर हुई है, पुरुषार्थ बिना नहींहोती. जैसे प्रकाशबिन पदार्थका ज्ञान नहीं होता, जिस पुरुष नें

अपना पुरुषार्थ त्याग दिया है. अरु दैवके आश्रयहुए हैंजो हमारा दैव कल्याण करैगा, सो न होवैगा; जैसे पत्थरसों तेल निकस्या चाहै सो नहीं निकसता; तैसे उसका कल्याण दैवतें न होवैगा. हे रामजी ! तुमतौ दैवका आश्रय त्यागकर अपने पुरुपार्थका आश्रयकरौ जिसने अपना पुरुषार्थ त्यागयाहै, तिसको सुंदर कांति लक्ष्मी त्याग जातीहै, जैसे वसंतऋतुकी मंजरी वसंतऋतुके गयेतें विरस होजातीहै, तैसे उनकी कांति लघु हो जातीहै, जिस पुरुषने ऐसा निश्चय कियाहै, जोहमारे पालनेहारा दैव है, सो पुरुष [illegible] है, जैसे कोउअपनी भुजाको सर्प जानके भय[illegible] है, औजानता नहीं जोअपनीभुजा है, तैसे अपने [illegible]कोत्यागके दैवका आश्रय लेता है, अरु भयको पावता है।

पुरुषार्थ नाम इसकाहै, जो संतहुकासंग अरुसच्छास्त्रोंका विचारकरके तिनके अनुसार विचारनां; अरुजो तिनको त्यागके अपनीइच्छाके अनुसार विचरतेहैं, सो सुखको नहींपावैंगे, न सिद्धताकोपावैंगे; अरुजो शास्त्रके अनुसार विचरतेहैं, सोइहांभी सुख पावेंगे, अरु आगे भीसुख पावेंगे; तैसेई सिद्धताको पावेंगे; तातें संसाररूपी जालविषे नहीं गिरनां, सो पुरुषार्थहै; संतजनहुकेसंग अरुसच्छास्त्रके अर्थ हृदयरूपी पत्रपै लिखना; बोधरूपी कानी करनी अरु विचाररूपी स्याही करनी, जब ऐसे पुरुपार्थ कर लिखैगा, तब संसाररूपी जालमें न गिरैगा

हे रामजी ! जैसे यह आदिनेत हुई है, जो पटहै, सो पटही है जो घटहै सोघटही है घटहै सो पट नहीं, औ पट है सो घट नहीं,तैसे यहभी नेत हुई है, अपने पुरुषार्थ बिना परमपदकी प्राप्तिनहीं होती ।

हे रामजी!जो संतहुकी संगति करताहै,अरु सच्छा-स्त्रभी विचारताहै अरुउनके अर्थमें पुरुषार्थ नहींकरता, तिसकरि सिद्धता प्राप्त नहीं होती.जैसे अमृतके निकटई बैठा होवै, अरु पान कियेबिना अमर नहीं होता, तैसे अभ्यास किये बिना अमर नहीं होता; औ सिद्धता प्राप्त नहीं होती ।

हे रामजी ! अज्ञानी जीव अपना जन्मव्यर्थ होतेहैं, जब बालक होते हैं,तब मूढ अवस्थामें लीन रहते हैं, अरु युवावस्थामें विकारहुको सेवतेहैं, अरु जरामें जर्जरीभूत होते हैं;इसी प्रकार जीवना व्यर्थ होता है, अरुजो अपना पुरुषार्थ त्यागकरके दैवका आश्रयलेता है सो अपना हंता होते हैं, सो सुखको नहींपावैंगे. हे रामजी!जो पुरुष व्यवहारविषे अरु परमार्थविषे आलसी हुवेहैं,अरु परमार्थको त्यागिके मूढ होरहैं, सो दीन हुएहैं,मानो पशुहैं; अरु दुःखको प्राप्त हुवेहैं, यह मैं विचार करके देख्याहै; तातें पुरुषार्थका आश्रय करौ, सत्संगअरु सच्छास्त्ररूपी आदर्शकरके अपने गुणकरै कदोषको देखके दोषका त्याग करौ,अरु शास्त्रका सि-द्धांत जोहै तिसकाअभ्यास करौ,जब दृढ अभ्यास करोगे तब शीघ्रही आनंदवान होहुगे ।

वाल्मीकि उवाच-जब इसप्रकार वसिष्ठजीने कहा तब सायंकाल समय हुवा तब सर्व सभा स्नानके निमित्त उठके खडी भई. परस्पर नमस्कार करके अपने घरको गये, बहुरि सूर्यकी किरणहुसाथ आय स्थिरभये।

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षु प्रकरणे पुरुषार्थ वर्णनं नाम पंचम सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः ६

अथ परमपुरुषार्थ वर्णनं ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! इसका जो पूर्वका किया पुरुषार्थहै, तिसका नाम दैव है अवर दैव कोउ नहीं, जब यह सत्संग अरु सच्छास्त्रको विचार पुरुषार्थ करै, तव पूर्वके संस्कारको जीत लेताहै, जो पुरुष इष्ट पावनेका यह शास्त्रद्वारा यत्न करैगा, सो अवश्यमेव अपने पुरुषार्थतें फलको पावैगा, अन्यथा कछुनहींहोता न हुआहै, न होवैगा, पूर्व जो कोउ पाप किया होता है, तिसका फल जब दुःख पावता है, तब मूर्ख कहताहै जो हाए दैव ! हाए दैव ! हाए कष्ट। हाए कष्ट।

हे रामजी। इसका जो पुरुषार्थ पूर्वका है तिसका नाम दैव है, अवर दैव कोउ नहीं, अवरजो कोउदैव कल्पते हैं, सो मूर्खहैं, अरुजो पूर्वके जन्म सुकृतकरके

आयाहोताहै, उही सुकृत सुख होयके देखाईदेता है, जो पूर्वका सुकृतबली होताहैतौ उसहीका जय होताहै, जोपूर्वका दुष्कृत बली होताहै, अरु शुभका पुरुषार्थ करताहै,सत्संग अरुसच्छास्त्रहुका विचारश्रवणकरता है,तौ पूर्वके संस्कारको जीत लेताहै, जैसे प्रथम दिन पाप किया होवै,दूसरेदिन बड़ा पुण्यकरै तौ पूर्वका पाप निवृत्त हो जाताहै, तैसे जब इहां दृढ पुरुषार्थ करै, तौ पूर्व के संस्कारको जीत लेता है, तातेंजो कछु सिद्ध होताहै, सो इसको पुरुषार्थ करके सिद्ध होता है,जो एकत्रभावकरि प्रयत्न करनां इसीका नाम पुरुषार्थ है,जो जिसका यत्न एकत्रभाव होयके करैगा,सोतिसको अवश्यमेव प्राप्त होवैगा,जो पुरुष अवर देवको जानके अपना पुरुषार्थ त्यागी बैठाहै, सो दुःखको पावैगा,शांतिवान् कवहु न होवैगा ।

हे रामजी । मिथ्यादैवके अर्थको त्यागकेतुम अपने पुरुषार्थका अंगीकार करौ, जो संतजन अरु सच्छास्त्रहु केवचनअरु युक्तिसाथ यत्नकरके आत्मपदको अभ्यास करके प्राप्तहोनां, इसीका नाम पुरुषार्थकर आत्मपदकी प्राप्ति होतीहै जो पूर्वके किये दुष्कृततें बड़ा पापी होताहै,सो इहांदृढ पुरुषार्थ कियेतें उसको जीत लेताहै, जैसे बड़ा मेघहोताहै, अरु तिसका पवन नाश करताहै, अरु जैसे वर्षादिनहुका क्षेम पक्काहोता है, अरु बरफ तिसका नाश कर देता है, तैसे पूर्वका

संस्कार पुरुषप्रयत्नकरिके नाश होता है ।

हे रामजी ! श्रेष्ठ पुरुष सोई है, जाने सत्संग अरु सच्छास्त्रद्वारा बुद्धिको तीक्ष्णकरके संसारसमुद्रतरनेका पुरुषार्थकियाहै; अरु जिनहु सत्संग अरु सच्छास्त्रद्वारा बुद्धि तीक्ष्ण नहीं करी, अरु पुरुषार्थको त्यागी बैठे हैं, सो पुरुष नीचतें नीच गतिको पावैंगे; अरु जोश्रेष्टपुरुष हैं,सोअपनेपुरुषार्थकरके परमानंदपदको पावैंगे,जिसके पायेतें बहुरि दुःखी नहीं होता; अरु जो देखनेकरि दीन होते हैं,अरु सत्संगतिअरु सच्छास्त्रके अनुसार पुरुषार्थ करते हैं,सो उत्तम पदको प्राप्त होते दृष्ट आवते हैं, हे रामजी ! जिन पुरुषनें पुरुषप्रयत्न कियाहै,तिनको सब संपदा आय प्राप्त होती है, अरु परमानंदकरि पूर्ण हो रहे हैं,जैसे रत्नहुकरि समुद्र पूर्ण है, तैसे उह परमानंदकरके पूर्ण हुए हैं,तातें जो श्रेष्ठ पुरुष हैं,सो अपने पुरुषार्थद्वारा संसारके बंधनतें निकस जाते हैं; जैसेकेसरी सिंह अपने बलसों पिंजरेतें निकस जाता है, तैसे उह अपने पुरुषार्थकरि संसारबंधनतें निकस जाता है ।

हे रामजी ! यह पुरुष और कछु न करै तो यह करै जो अपने वर्णाश्रमके अनुसार विचरे,अरु सार पुरुषार्थ करै; जो संतहु अरु सार शास्त्रहुका आश्रम होवै तिसके अनुसार पुरुषार्थ करै, तब सब बंधनतें मुक्त होवैगा,अरुजिस पुरुषनें अपने पुरुषार्थका त्यागकिया है, किसी अवर देवको मानके कहता है,जो उह मेरा

कल्याण करैगा, सो जन्ममरणको प्राप्त होवैगा, अरु शांतिवान् कवहु न होवैगा ।

हे रामजी ! इस जीवको संसाररूपी विषूचिका रोग है, तिसको दूर करनेका उपाय मैं कहता हौं, संतजन अरु सच्छास्त्रहुंके अर्थविषे दृढ भावना करनी, जो कछु तिनहुंमैंते सुन्या है, तिसका वारंवार अभ्यास करना, अवर सबकल्पना त्यागिके एकांत होयके तिसका चिंतवन करना. तव इसको परमपदकी प्राप्ति होवैगी, अरु द्वैतभ्रम निवृत्त हो जावैगा; अद्वैतरूपडा भासैगा, इसीकाइ नाम पुरुषार्थ है ।

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे परमपुरुषार्थवर्णनं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः ७

अथ पुरुषार्थोपमावर्णनं ।

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! पुरुषार्थकरके इसको आध्यात्मिक आदि ताप आय प्राप्त होते हैं, तिनकरि शांतिको नहीं पावता; तुमहुनें रोगी नहीं होवना, अपने पुरुषार्थद्वारा जन्ममरणके बंधनतें मुक्त होहु, अवर कोऊ देव मुक्ति नहीं करनेका, अपने पुरुषार्थद्वारा संसारबंधनतें मुक्त होना है, जिस पुरुषने अपने पुरुषार्थका प्रयोग

किया है. अरु किसी अवर देवको मानीकरि तिसपरा-
यण हुवा है, तिसका धर्म, अर्थ, काम औ मोक्ष नष्ट हो
जावैगा, अरु नीचतें नीच गतिको प्राप्त होवैगा ।

हे रामजी । शुद्ध चैतन्य जो इसका अपना आपहै,
अरु वास्तवरूप है, तिसका आश्रयजो आदिचित्संवेद-
नस्फूर्ति है, जो अहममत्व संवेदन होयकेफुरने लगता
है, बहुरि इंद्रिय अहंस्फूर्ति हैं । जब यह स्फुर्ना संत
अरु शास्त्रके अनुसार होवै तब उह पुरुष परमशुद्ध-
ताको प्राप्त होता है, अरु जो सच्छास्त्रके अनुसार न
होवै, तब बासना के अनुसार भावअभावरूप जो भ्रम-
जाल है, तिसविषे पन्था घटीयंत्रकी नांई भटकता है,
शांतिवान् कबहु नहीं होता ।

हे रामजी! जिस किसीको सिद्धता प्राप्त हुई है, सो
अपने पुरुषार्थकर हुईहै बिना पुरुषार्थ सिद्धताको प्राप्त
न होवैगा, जब किसी पदार्थको ग्रहण करना होताहै,
सोभुजा पसारियें तो ग्रहण करना होता है, अरुजो
किसी देशको प्राप्त होना होवै, तब जब चालिये तब
जाए पहुंचीयें, अन्यथा नहीं होता, तातें पुरुषार्थ बिना
सिद्ध कछु नहीं होता जो कोउ कहता है दैव करैगा
सो होवैगा सो मूर्खहै हे रामजी । अवर दैव कोउ
नहींइस पुरुषार्थका नाम दैव है, यह दैव शब्द
मूर्खहूका परचावा है; जोकिसी कष्टसाथ दुःख पाया,

तिसको कहतेहैं, दैवका कियाहै, सो अवर तो दैव कोउ नहीं ।

हे रामचंद्र ! जो अपना पुरुषार्थ त्यागि के दैवके आश्रय हो रहेगा, सोसिद्धताको प्राप्त न होवैगा, काहेतें जो अपने पुरुषार्थ बिना सिद्धता किसीको प्राप्त नहीं होती, अरु बृहस्पतीनें जो दृढ पुरुषार्थ किया है तब सर्व देवताहुका राजा इंद्रका गुरुहुआ है, अरु शुकजी अपने पुरुषार्थद्वारा सर्व दैत्यहुका गुरुहुआ है, अवर जो सामान्य जीवहैं, तिनविषे जिसनेंपुरुषप्रयत्न कियाहै, सो पुरुष उत्तम हुआहै. जिसको जातिसिद्धता प्राप्तभईहै सो अपने पुरुषार्थकरि भईहै; अरु जिस पुरुषनें संत अरु शास्त्रहुके अनुसारपुरुषार्थ नहींकिया सोमेरे देखतें देखतें बड़े राजा, अरु प्रजा, अरु धनतें अवर विभूतितेंहीन होगयेहैं, नरकहुविषे परे जलते हैं; जिसकरके कछु अर्थसिद्ध होवै, तिसकानाम पुरुषार्थ है; अरु जिसकरके अनर्थकी प्राप्ति होवै तिसका नाम अपुरुषार्थ है ।

हे रामजी! इस पुरुषको कर्तव्य यहीहै; जो सच्छास्त्र अरुसंतहुको संगकरि बुद्धितीक्ष्ण करै, अरु शुभगणको पुष्ट करै, दया; धैर्य, संतोष, वैराग्यका अभ्यास करकेबुद्धि तीक्षण करै, अरु तीक्षण बुद्धि करके पुष्ट करै; जैसे बड़ेतालतेंमेघ पुष्ट होताहै, बहुरिवर्षा करके मेघतालको पुष्टकरताहै, तैसे शुभगुण करके बुद्धि पुष्टहोती है, अरु पुष्ट बुद्धिकरि शुभगुण पुष्ट होते हैं ।

हेरामजी! जो बालक अवस्थाते लेकर अभ्यासकिया होता है, उसको शुद्धता प्राप्त होती है, अर्थ यह जो दृढ अभ्यासबिना शुद्धताप्राप्त प्राप्त नहीं है, जो किसी देश अथवा तीर्थ जाना होवे, तब मार्गविषे, निरालस होयके चल्या जावै, तोजाय पहुंचैगा, अरु जब भोजनकरैगा तबक्षुधानिवृत्त होवैगी, अन्यथा नहीं होवैगी, अरु जब मुखविषे जिव्हा शुद्ध होवैगी तब पाठ स्पष्ट होवैगा, गूंगे सों पाठ नहींहोता, तातें जो कछु कार्य सिद्ध होता है, सो अपने पुरुषार्थकर सिद्ध होता है, तूष्णीं हो रहने तेंकोउ कार्यसिद्धि नहीं होता, अरुसबही गुरुबैठे हैं, इन हुतें पूछि देखो, आगे जो तुमारी इच्छा होवे सो करो; अरु जो मुझसो पूछो, तो सब शास्त्रका सिद्धांत कहताहौं, जिसकरि सिद्धताको प्राप्त होवैगा.

हे रामजी! संतजो हैं ज्ञानवान् पुरुष, अरु सच्छास्त्र जो हैं ब्रह्मविद्या; तिनके अनुसार संवेदन अरु मन अरु इंद्रियहुआ विचारना होवै; अरु इसतें विरुद्ध होवै तिसतें वर्ज्य रखना; तिसकरके तुझको संसारका राग, दोष, स्पर्श नहीं करैगा, सबतें निर्लेप रहैगा, जैसे जलतें कमल निर्लेप रहताहै तैसे तूं निर्लेप रहैगा, हे रामजी! जिस पुरुषहुतें शांति प्राप्त होवै तिसकी भली प्रकार सेवा करियें, काहेतें जो उनका बडा उपकार है, जो संसारसमुद्रतें निकासी लेते हैं, हे रामजी! संत जनभी उही है, अरु सच्छास्त्रभी उही है, जिसके बिचारकरि

अरु संगति करि संसारतें चित्त उपरत होवै, मोक्षका उपाय उही है,तातें अवर सब कल्पनाको त्यागके अपने पुरुषार्थको अंगीकार करहु, तब जन्ममरणका भय निवृत्ति हो जावै ।

हे रामजी ! जो यह वांछा करता है, अरु तिसके निमित्त दृढ पुरुषार्थ करता है,तब अवश्यमेव तिसको पावै, अरु जो बडे तेज अरु विभूतिकरके संपन्न तुझको दृष्ट आता है,अरु सुनता है,सो अपने पुरुषार्थकरि भये हैं;अरु जो महानिष्ट सर्प कीट आदिक तुझको दृष्टआता है, तिननें अपने पुरुषार्थका त्याग किया है, तब ऐसे हुवे हैं.

हे रामजी ! अपने पुरुषार्थको आश्रय पर, नहीं तौ सर्पकीटादिक नीच योनीको प्राप्त होवेगा,जिनपुरुषोंनें अपना पुरुषार्थ त्याग्या है, औ किसी दैवका आश्रय धर्या है, सो महामूर्ख है, काहेतें जो यह वार्ता व्यवहारमें भी प्रसिद्धहै जो अपने उद्यम कियेविना किसी पदार्थकी प्राप्ति नहीं होती; तौ परमार्थकी प्राप्ति कैसे होवै ? तातें दैवको त्यागकरि संतजन अरु सच्छास्त्रोंके अनुसार यत्न करहु, परमपद पावनेके निमित्त जो दुःखहीतें मुक्त होवहीं. हे रामजी ! जो जनार्दन विष्णुजी है, सो अवतार धारिकरि दैत्यहुको मारता है, अरु अवर चेष्टाभी करताहै,परंतु आपका स्पर्श इसको नहीं होता, काहेतें जो अपने पुरुषार्थकरके अक्षयपदको प्राप्त हुवा

है, तुमभी पुरुषार्थका आश्रय करो, अरु संसारसमुद्रको तरी जावहु.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे पुरुषार्थोपमा वर्णनं नाम सप्तमः सर्गः ७ ॥

अष्टमः सर्गः ८

अथ परमपुरुषार्थ वर्णनं

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! यहजो दैवशब्द है, सो मूर्खहूनें कल्प्याहै, जोदैव हमारी रक्षा करेगा, हमको दैवका आकार कोउ दृष्ट नहींआवता, न कोउ दैवका कालहै, न देव कुछ करताहीहै; मूर्ख लोक दैव दैव गरे कहतेहैं, अवर दैव कोउ नहीं. इसका पूर्वका कर्मही दैव है।

हेरामजी! जिस पुरुषनें अपने पुरुषार्थका त्यागकिया है, अरु दैवपरायणहुवेहैं; जो हमाराकल्याण करेगा सो मूर्खहै, काहेतें जो अग्निविषे यहजाय पडेअरु दैव इसको निकासी लेवै; तब जानियें जो कोउ दैवभी है, सो तौ नहीं, अरुजो दैव करताहै, तौ इह स्नान, दान भोजन आदिकहू का त्याग करि तूष्णीं होय बैठे, आपेई दैव कर जावैगा, सोभी इसको कियेबिना नहीं होता, तातें अवरदैव कोउ नहीं; अपना पुरुषार्थही कल्याण कर्ता है।

हे रामजी।जो इसका कियाहुआ कछुनहीं होता,अरुदैव हीकरनेहारा होता,तौशास्त्र अरुगुरुका उपदेशभीनहीं होता,सो सच्छास्त्रके उपदेशकरके अपने पुरषार्थद्वारा इसको वांछित पदवी प्राप्त होतीहै,तातें अवरजो कोउ देवशब्दहै सो व्यर्थहै;इसकेभ्रमको त्याग करके संतअरु शास्त्रहुके अनुसार पुरुषार्थकरै,तब दुःखहुतेंमुक्त होवैगा.हे रामजी ! अवर दैव कोउ नहीं;इसका पुरुषार्थ जो है; स्पंद सोई दैव है.

हे रामजी ! जो कोउ अवर दैव करनेहारा होता, तौ जब इह शरीरको त्यागता है, अरु शरीर सब नाशहो जाताहै;क्रिया शरीरसोंकछुनहीं होती;काहेतें जो चेष्टा करनेहारा त्याग जाता है, जो दैवहोता तौ सबी शरीरसों चेष्टा करावता;सो तौ चेष्टा कछु नहीं होती;तातें जानीता है जो दैवशब्द व्यर्थ है.हेरामजी! पुरुषार्थकी वार्ता है, सो अज्ञानी जीवहुकोभी प्रत्यक्ष है,जो अपने पुरुषार्थबिना कछु होता नहीं; गोपालभी जानता है जो मैं गैयांको चराउं नहीं तौ भूखीही रहैंगी; तातें अवर दैवके आश्रय बैठी नहीं रहता,आपही चराय ले आता है.

हे रामजी । अवर दैवकी कल्पना भ्रमकरके पर करतें हैं; अवर दैव तो हमको कोउ दृष्ट नहीं आता;हस्त, पाद,शरीर,दैवका कोउ दृष्टनहीं आता,अपनेपुरुषार्थ, करि सिद्धतो दृष्ट आवती है,अरु जो कोउ आकारतें रहित दैव कल्पियें तौ नहीं बनता;काहेतें जो निराकार

अरु साकारका संयोग कैसे होवै.हे रामजी। अवर दैव कोउ नहीं, अपना पुरुषार्थही, दैवरूप है, जो राजा ऋद्धिसिद्धिसंयुक्त भासता है, सोभी अपने पुरुषार्थकरि हुए हैं.

हेरामजी। यह जो विश्वामित्र है,याने देवशब्द दूरहीतें त्याग कियाहै;सोभी अपने पुरुषार्थकरके क्षत्रियतें ब्राह्मण हुवे हैं; अरु अवर जो बडे विभूतिवान् हुवे हैं, सोभी अपने पुरुषार्थकरि दृष्टआवतेहैं. हे रामजी।जो दैव पढेबिनापंडित करे तो जानिये जो दैवनें किया,सो तो पढेबिना पंडित कहुं नहीं होता,अरु जो अज्ञानीतें ज्ञानवान होते हैं, सोभी अपने पुरुषार्थकरि होते हैं, तातेंअवर दैव कोउ नहीं,मिथ्या भ्रमको त्यागकरिसंतजन अरुसच्छास्त्रहुकेअनुसार संसारसमुद्रतरनेकाप्रयत्न करहु,तेरे पुरुषार्थविना अवर दैव कोउ नहीं, जो अवर दैव होता तो बहुत बेर क्रियाबलभी अपनी क्रियाको त्यागके सोई रहता, आपे दैवही पडा करेगा, सोऐसे तो कोउ नहीं करता,तातें अपने पुरुषार्थविना कछु सिद्ध नहीं होता,अरु जो इसका किया कछुन होवा तो पाप करनेहारे नरकन जाते,अरु पुण्य करनेहारे स्वर्गनजाते, परंतु पाप करनेहारे नरकमें जातेहैं,अरु पुण्य करनेहारे स्वर्गमें जाते हैं, तातें जो कछु प्राप्त होता है,सो अपने पुरुषार्थकरि होता है.

हे रामजी। जो कोउ अवर दैव करता है ऐसा कहै तिसका शिर काटिये। अरु तिनके आश्रय जीवतारहै,

तौ जानीयें जो कोउ दैव है,सो तौ जीवता कोउ नहीं, तातें दैवशब्दको मिथ्याभ्रम जानके संतजन अरु सच्छा स्त्रहुके अनुसार अपने पुरुषार्थकरि आतमपदविषे स्थित होहु.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षप्रकरणे परमपुरुषार्थ वर्णनं नामाष्टम सर्गः ॥८॥

नवमः सर्गः ९.

अथ परमपुरुषार्थ वर्णनं ।

राम उवाच—हे भगवन् ! सर्व धर्महुके वेत्ता, तुम कहते हौ और दैव कोउ नहीं, परंतु ब्राह्मणभी दैव है ऐसा कहते हैं; औ दैवका किया सब कछु होताहै, अरु सुखदुःखको देनेहारा दैव है, यह लोकविषे प्रसिद्ध है.

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! मैं तुझको ऐसे कहता हौं,ज्यौं तेरा भ्रम निवृत्त हो जावे,इसहीका कर्म किया हुवा है; शुभ अथवा अशुभ तिसका फल अवश्यमेव भोगना है, सो दैव कहौ; पुरुषार्थ कहौ, अवर दैव कोउ नहीं, अरु कर्ता, क्रिया,कर्म आदिकहुविषे तौ दैव कोउ नहीं; अवर कोउ दैवका स्थान नहीं,रूप नहीं तो अवर दैव क्या कहियें.हे रामजी ! मूर्खहुके परचावने- निमित्त दैवशब्द कहा है, जैसे आकाश शून्यहै तैसे दैवभी शून्य है.

राम उवाच—हे भगवन् सर्व धर्मन के वेत्ता तुम

कहते हौ जो अवर देव कोउ नहीं,सोआकाशकीनांई शून्यहै, सो तुमारे कहनेकरभी देव सिद्ध होताहै, तुम, कहतेहौ जो इसके पुरुषार्थका नाम देव है, अरुजगत् विषेभी देवशब्द प्रसिद्ध है।

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी! मैं ऐसे तुझको कहता हौं,जिसकरि देवशब्द तेरे हृदयसों उठिजावै,अर्थ यह जो शून्यहोजावै; देव नाम अपने पुरुषार्थका है अरु पुरुषार्थ नाम कर्मका है, अरु कर्म नाम वासनाका है, वासना मनतें होतीहै, अरु मनरूपी पुरुषहै, जिसकी वासना करताहै, सोई इसको प्राप्त होताहै,जो गांवकी प्राप्ति होनेकी वासना करता है सो गांवको प्राप्त होता है,जोपत्तनकी वासना करतासोपत्तनको प्राप्त होताहै, तातें अवरदेव कोउ नहीं, पूर्वका जो शुभ अथवा अशुभ दृढ पुरुषार्थ किया तिसका परिणाम सुख दुःख अवश्य होता है, औ तिसीकाई नाम देव है।

हे रामजी! तुम बिचारकर देखो जो अपना पुरुषार्थ कर्महुतें भिन्न नहींतो सुखदुःख देनहारा अरुलेनहारा देव कोउ नहीं हुआक्यों?यहजो पापकी वासनाकरता है, अरु शास्त्रविरुद्ध कर्म करताहै,सो किसकरिकरता है।पूर्व का जो इसका दृढ पुरुषार्थकर्म है, तिसकरियह पाप करता है अरु जो पूर्वका पुण्य कर्म कियाहोता है, तो यह शुभ मार्गविषे विचरता है।

राम उवाच—हे भगवन्! जो पूर्वकी दृढ वासनाके अनुसार यह विचरता है, तौ मैं क्या करौं? मुझको

पूर्वकी वासनोंने दीन किया है, अब मुझको क्या कर्तव्य है ।

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! जो कछु इसकी पूर्वकी वासना दृढ हो रही है तिसके अनुसार यह विचारतहैं, अरु जो श्रेष्ठ मनुष्य हैं सो अपने पुरुषार्थकरकेपूर्वके मालिन संस्कार कोशुद्ध करतेहैं;तिसके मल दूर होजातेहैं, सच्छास्त्र अरु ज्ञानवानके वचनानुसार दृढ पुरुषार्थ करोगे, तब मलिन वासना दूर हो जावैगा ।

हे रामजी!पूर्वके मलिन पाप कैसे जानियें अरु शुभ कैसे जानियें सो श्रवण करहु, जो चित्त विषयकीओर धावै,अरु शास्त्र विरुद्ध मार्गकी ओरजावै, अरुशुभकी ओर न धावै,तौ जानियें,जो पूर्वका कर्म कोउ मलिन है, अरुजोसंतजनहु अरु सच्छास्त्रहुके अनुसार चेष्टा करै; अरु संसारमार्गतें विरक्त होवै, तब जानियें जो पूर्वका कर्म शुद्ध है. तातें हे रामजी ! तुझको दोनों करके सिद्धता है;जो पूर्वका संसार शुद्ध है तातें तेरा चित्त शीघ्रही सत्संगअरु सच्छास्त्रहुके वचनको ग्रहण करी लेवैगा, अरु शीघ्रही तुझको आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी, अरुजो तेरा चित्त इस शुभ मार्गविषे स्थिर नहीं हो सकता, तौ दृढ पुरुषार्थकरि संसारसमुद्र तें पार होवहु ।

हे रामजी!तूं चैतन्य है, जडतौ नहीं, अपने पुरुषार्थका आश्रय करहु, मेराभी यही आशीर्वादहै,जो तुमारा चित्त शीघ्रही शुभ आचरणविषे स्थिर होवै,अरु

ब्रह्मविद्याका जो सिद्धांतसार है, तिसविषे स्थित होवै. हे रामजी! श्रेष्ठ पुरुषभी वहीहै, जिसका पूर्वका संस्कार यद्यपि मलिनभी था, परंतु संत अरु सत्शास्त्रकेअनुसार दृढ पुरुषार्थ कियाहै, सो सिद्धताको प्राप्त भयाहै; अरु जोमूर्ख जीवहैं तिनहुने अपना पुरुषार्थ त्याग कियाहै, तातें संसारतें मुक्त नहीं होता; पूर्वका जो कोउ पापकर्म किया होताहै, तिसके मलनकरिके पापमें धावताहै, अपना पुरुषार्थ त्यागनेतें अंध होजाताहै, अरु विशेषकरि धांवता है.

जो श्रेष्ठ पुरुषहैं, तिनको यह कर्तव्यहै, प्रथमतो पांचों इंद्रिय वश करनी, शास्त्रानुसार तिनको वर्तावनी। शुभ वासना दृढ करनी, अशुभका त्यागकरना, यद्यपि त्यागनी दोनो वासनाहैं, प्रथम शुभवासनाको इकट्ठी करनी, अरु अशुभ कात्याग करना, जब शुद्ध वासनाकरके कषाय परिपक्व होवैगा, अर्थ यहजो अंतःकरण जब शुद्ध होवैगा, हृदयविषे संत अरु सच्छास्त्रकाजोसिद्धांत है, तिसका बिचार उत्पन्न होवैगा, औतातें तुझकोआत्मज्ञानकी प्राप्ति होवैगी तिसज्ञानद्वारा आत्मसाक्षात्कार होवैगा, बहुरि क्रियाज्ञानकाभी त्याग होजावैगा, केवल शुद्ध अद्वैतरूपअपना आप शेष भासैगा, तातेंहेरामजी! अवर सबकल्पनाका त्यागकरि संतजन अरु सच्छास्त्रहु के अनुसार पुरुषार्थ करहु।

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे परमपुरुषार्थवर्णनं नाम नवम सर्गः ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः १०

अथ वसिष्ठोत्पत्तिस्तथा वसिष्ठोपदेशागमन वर्णनं

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! मेरे वचनका ग्रहण करौ, सोवचन बांधव जैसेहैं, बांधव कहियें जो तेरे परममित्र होवहींगे, अरु दुःखहुतें तेरी रक्षा करेंगे. हे रामजी ! यहजो मोक्षउपाय तुझको कहता हौं तिसके अनुसार तूं पुरुषार्थ करहु, तब तेरा परम अर्थ सिद्ध होवेगा,अरुयह चित्तजो संसारके भोगकीओर धावता है, तिस भोगरूपी खाडविषे चित्तको गिरने मत देहु, भोगको विरस जानिके त्याग देहु;उह त्याग तेरापरम मित्र होवैगा;अरु त्यागभी ऐसा करहुजो बहुरिभोगहुका ग्रहण न होय.

हेरामजी ! यह मोक्षउपाय संहिताहै,चित्तको एकाग्र करके इसकोश्रवण करि तिसकरि परमानंदकीप्राप्ति होवैगी, प्रथम शम अरु दमको धारौ, अर्थ यह जो संपूर्ण संसारकी वासनाकात्याग करहु,अरु उदारताकरके तुस रहना,इसका नाम शमहै, अरु दम अर्थ यहजो बाह्य इंद्रियको वश करना;जब इसको प्रथम धारैगातब परमतत्वका विचार आपउत्पन्न होवैगा,तिस विचारतें विवेकद्वारा परमपदकी प्राप्ति होवैगी. जिस पदकोपाय करिबहुरि दुःख कदाचित् न होवैगा, अविनाशी सुख

तुझको आय प्राप्त होवैगा, तातें जोकछु मोक्षउपाययह संहिता है तिसके अनुसार पुरुषार्थ करहु, तब आत्म-पदको प्राप्त होवहीगा, पूर्व जो कछु ब्रह्माजीनें हमको उपदेश किया है, सो मैं तुझको कहता हौं.

राम उवाच—हे मुनीश्वर। तुमको जो ब्रह्माजीनें उपदेश किया था, सो किस कारण किया था अरुकैसे तुमनें धाऱ्या सो कहो.

वसिष्ठ उवाच—हे रामचन्द्र! शुद्ध चिदाकाश एक है, अरु अनंत है, अविनाशी है, परमानन्दरूपहै, चिदानंदस्वरूप है, ब्रह्महै, तिसविषे संवेदन स्पंदरूप होत है, सो विष्णुसों करि स्थित भई है, सो विष्णुजीकैसा है, जो स्पंद अरु निस्पंदविषे एकरसहै, कदाचित् अन्य भावको नहीं प्राप्त हुआ, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजतेहैं तैसे चिदाकाशतें स्पंदकरके विष्णु उत्पन्न हुवा है, तिसविष्णुजीके, स्वर्णवत् किरणवालेनाभि कमलतेंब्रह्माजीप्रगट भयाहै, तिस ब्रह्माजीनें ऋषिमुनीश्वरसहित स्थावर जंगमप्रजा उत्पन्न करीसो मनोराज्यकरिब्रह्माजीनें जगतको उत्पन्न किया।

तिस जगतकी कौनविषे जो जंबुद्वीप, भरतखंड है, तिसविषे मनुष्यको दुःखकरि आतुर देखाकरि ब्रह्माजीको करुणा उपजी, जैसे ज्यौं पुत्रको देखी पिताको करुणाउपजती है, तब तिसके सुखनिमित्त ब्रह्माजीनें तप उत्पन्न किया, जो सुखी होवहीं, अरुआज्ञा करी जो तप करो,

तब तप करत भये,तिस तपकरि स्वर्गादिकहुको जाय प्राप्त होने लगे,तिन सुखहुको भोगीकरि बहुरे गिरहीं, तब दुःखी रहे. ऐसे ब्रह्माजी देखीकरि सत्यवाक् धर्मको प्रतिपादन करत भये, तिनके सुखके निमित्त आज्ञा करी, तिस धर्मके प्रतिपादनकरि लोकहुको सुख प्राप्त होवने लगे. तहां केताक काल सुख भोगकरि बहुरि गिरहीं तब दुःखीके दुःखी रहैं,बहुरि ब्रह्माजीनें दानतीर्थादिकपुण्य क्रिया उत्पन्न करके उनको आज्ञाकरीजोइनकेसेवनेकरि तुम सुखी होहुगे, जब वह जीव उनको सेवने लगे, तब बडे पुण्यलोकहुको प्राप्त भये,अरु तिनके सुख भोगने लगे,बहुरि केताक कालअपनेकर्मकेअनुसारभोगभोगी गिरे,तब तृष्णाकरि बहुत सुख दुःख भये,अरु दुःखकरि आतुर हुवे;तब ब्रह्माजी देखत भया,जो जन्म अरु मरणके दुःखकरि महादीन होतेहैं,तातें सोई उपाय करियें, जिसकरि उनका दुःख निवृत्त होवे ।

हे राम ! ब्रह्माजी विचरत भया, जो इसका दुःख आत्मज्ञानबिना निवृत्त नहीं होनेका, तातें आत्मज्ञानको उत्पन्न करियें, जो यह सुखी होवहीं,इस प्रकार विचारकरि आत्मतत्त्वका ध्यानकरत भया,आत्मतत्त्वके ज्ञानतें संकल्प किया, तिस ध्यानके करनेतें जो शुद्ध तत्वज्ञानहै, तिसकी मूर्ति होकरि मैं प्रगट भया, सो मैं कैसा हौं?जो ब्रह्माजीके समान हौं,जैसे उनके हाथविषे कमंडलु है, तैसे मेरे हाथविषे कमंडलु है, जैसे उनके कंठविषे रुद्राक्षकी माला है, तैसे मेरे कंठमेंभी रुद्राक्षकी

माला है, जैसे उनके उपर मृगछाला है, तैसे मेरे उपर मृगछालाहै,इसप्रकार ब्रह्माजी अरु मेरा समान आकार है,अरु मेरा शुद्ध ज्ञानस्वरूप है,मुझको जगत कछुनहीं भासता,सुषुप्तिकी नांई जगत् मुझको भासता है, तब ब्रह्माजीनें बिचार कियाजो इसकोमैं जीवहुके कल्याणनिमित्त उत्पन्न है, अरु यह तौ शुद्ध ज्ञानस्वरूप है अरु अज्ञानमार्गीको उपदेश तब होवै जब कछु प्रश्न उत्तर होवै, अरु तब मिथ्या का बिचार होवै.

हे रामजी!जीवहुके कल्याणनिमित्त मुझको ब्रह्माजीनें गोदमें बैठाया, अरु शीसपैं हाथ फेर्या, तिसकरि मैं शीतल होगया; जैसे चंद्रमाकी किरणकरि शीतलता होती है, तैसे मैं शीतल भया; तब ब्रह्माजीनें मुझको जैसे हंसको हंस कहै यों कह्या,हे पुत्र!जीवहुके कल्याणनिमित्त एक मुहूर्तपर्यंततूं अज्ञानको अंगीकार करहु, श्रेष्ठ पुरुष जोहैं सो अवरहुके निमित्त भी अंगीकारकरते आये हैं.जैसे चंद्रमा बहुत निर्मल है;परंतु श्यामताको अंगीकार किया है, तैसे तूंभी एक मुहूर्त अज्ञानको अंगीकार करहु.

हे रामजी!इसप्रकार मुझको कहीकरि ब्रह्माजीनेंशाप दिया,जो तूं अज्ञानी होवैगा;तब मैं ब्रह्माजीकी आज्ञा मानी शापको अंगीकार किया;तबमेरा जो शुद्धआत्म तत्व अपना आपथा,तिसतेंमैं अन्यकी नांई होतभया, मेरी स्वभावसत्ता मुझको बिस्मरण हो गई, अरु मेरा मन जागीआया,भावअभावरूप जगत मुझको भासने

लगा, अरु आपको मैं वसिष्ठ जानत भया अरु ब्रह्माजी का पुत्र मैं जानत भया; अरु नानाप्रकारके पदार्थसहित जगत जानतभया, अरु तिनकी ओर चंचल होत भया तबमैं संसारजलको दुःखरूपजानीकरि ब्रह्माजीतें पूछत भया, हे भगवन्! यह संसार कैसे उत्पन्न भया अरु कैसे लीन होता है? हे रामजी ! जब इस प्रकार पिता ब्रह्माजीसों प्रश्न किया, तब भली प्रकार मुझको उपदेश करत भये, तिसकरि मेरा अज्ञान नष्ट होगया, जैसे सूर्य उदय हुये तम निवृत्त हो जाता है तैसे मेरा अज्ञान निवृत्त होगया, अरु मैं शुद्धताको प्राप्त भया, जैसे आदर्शको मार्जन करता है, अरु शुद्ध हो आवता है, तैसे मैं शुद्ध हुवा,

हे रामजी ! मैं ब्रह्माजीतें भी अधिक होत भया, तब मुझको परमेष्ठी ब्रह्माजीनें आज्ञा करी, हे पुत्र! जंबुद्वीप भरतखंडमें जाउ, तुझको अष्ट प्रजापतिका अधिकार है तहां जाइकरि जीवहुको उपदेश करहु, जिसको संसारसे सुखकी इच्छा होवै, तिसको कर्ममार्गका उपदेश करना तिसकरि स्वर्गादिक सुख भोगैंगे, अरु संसारतें विरक्त होवै, सो जिनको आत्मपदकी इच्छा होवै, तिसको ज्ञान उपदेश करना, तातें तूं अब भूलोकविषे जाहु, हे रामजी ! इसप्रकार मेरा उपदेश अरु उपजना हुआ है, अरु इस प्रकार मेरा आवना हुवा है,

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षु प्रकरणे वसिष्ठोत्पत्तिस्तथा वसिष्ठोपदेशागमनं नाम दशम सर्गः ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः ११

अथ वसिष्ठोपदेश वर्णनं ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी । इसप्रकार पृथ्वीविषे मेरा आवना भया, मैं कैसा हौं ? जाको जो ज्ञानकी वांछा होवे सो पूर्ण करिवेके लिये ब्रह्माजी मुझको उत्पन्न करत भया ।

श्रीराम उवाच—हे भगवन् ! तिस ज्ञानकी उत्पत्तितें अनंत जीवनकी शुद्धि कैसे भई, सो कहौ,

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! जो शुद्ध आत्मतत्व है,तिसकास्वभावरूप संवेदन स्फूर्ति है ,सो ब्रह्माजीरूप होकरि स्थित भई है, जैसे समुद्र अपनी द्रवताकरके तरंगरूप होता है,तैसे ब्रह्माजी भया है; वहुरि संपूर्ण जगतको उत्पन्नकिया,अरुतीनोंकालउत्पन्नकिये,तब केता काल व्यतीत हुवा,अरु कलयुग आया तिसकरि जीवहुको बुद्धि मलिन हो गई;अरु पापविषे विचरने लगे,शास्त्रवेदकी आज्ञा मानवेतें रहीगये,इसप्रकार धर्मकी मर्यादा छुपी गई; अरु पाप प्रगट भया; जेती कछु राजधर्मकी मर्यादा थी,सो सब नष्ट हो गई; अरु अपनी इच्छाके अनुसार जीव विचरने लगे,तातेंकष्ट पावनेलगे;तिनकोंदखीकरि ब्रह्माजीको करुणा उपजी तिस दयाको धारिकरि भूमिलोकविषे मुझको भेज्या, अरु कहा,हे पुत्र ! जायकरितुम धर्मकी मर्यादास्थापन करो,अरुजीवनको शुद्धउपदेशकरौ,जिसको भोगहुकी

इच्छाहोवे, तिसकोकर्मकांडका उपदेश करना, औजप, तप, स्नान, संध्या, यज्ञादिकका उपदेश करना, अरुजो संसारतें विरक्त हुवे हैं अरु मुमुक्षु हैं, जाको परमपद पावनेकीइच्छा है, तिसकोब्रह्म विद्याका उपदेशकरना,

हे रामचंद्र ! जिस प्रकार मुझकोआ ज्ञाकरि भूमिलोकविषे भेजते भये तैसेंई सनत्कुमार, नारदकोहु कहते भये, तबहम सब ऋषीश्वर इकट्ठे होकरिविचरतभये, जो जगतकी मर्यादा किस प्रकार होवे, अरु जीव शुभ मार्गविषे कैसे विचरहीं. तब हमहुनें यह विचार किया, जोप्रथमराज्यकास्थापनकरना जो जीव तिनकीआज्ञानुसार विचारहीं, प्रथम दंडकर्ता राजा स्थापन किया, सो कैसा राजा जो बडा वीर्यवान्, अरु तेजवान्, बडा उदार आत्मा भया, तिन राजाहुको हम अध्यात्मविद्याकाउपदेश किया, तिसकरि परमपदकोप्राप्त भया, जो परमानंदरूप अविनाशी पद है, तिस ब्रह्मविद्याका उपदेश तिसको भया, तब सुखीभया, इस कारणतें ब्रह्मविद्याका नाम राजविद्या है, तब हमहुनें वेद, शास्त्र, श्रुति, पुराणकरि धर्मकी मर्यादा स्थापन करी, सो जप, तप, यज्ञ, दान, स्नान, आदिक क्रियाको प्रगट कीनी; अरे जीव! तुम इसके सेवनेकरि सुखी होहुगे, तब सब फलको धारिकरि तिनको सेवने लगे, तामें कोउबिरला निरहंकार हृदयशुद्धताके निमित्त कर्म करता था.

हे रामजी ! जो मूर्ख थे सो कामनाके निमित्त मनमें फूलके कर्म करते थे सो घटीयंत्रकी नांई भटकते फिरते

थे,सो कवहु ऊर्ध्व अरु कवहु नीचे आते थे, औ जो निष्काम कर्म करते थे,तिसका हृदय शुद्ध होताहै,फिर सो ब्रह्मविद्याके अधिकारी होते हैं ,ताके उपदेशद्वारा आत्मपदकी प्राप्ति होत है, इस प्रकारसों जीवन्मुक्तहुवे हैं, कोई राजा विदितवेद सिद्ध हुवेहैं, सो राजको परंपरा चलावता हमारे उपदेश द्वारा ज्ञानको प्राप्त भये हैं औ राजा दशरथहु ज्ञानवान् भया है औ तूं भी इसी दशाको आयके प्राप्त हुवा है, सो तूं सबतें श्रेष्ठ हुवा है, जैसे तूं विरक्त आत्मा हुवाहै, तैसे आगेहु स्वाभाविक विरक्त आत्मा भयेहैं, सो स्वभावकर देहशुद्धिकर हुवेहैं, इसी कारणतें तूं श्रेष्ठ है, जो कोउ अनिष्ट दुःख प्राप्त होताहै तिसकर विरक्तता उपजती है, सो तुझको नहीं भई, तुझको सब इंद्रिय के विषय विद्यमानहैं, तैसे होत तेरे को वैराग्य हुआ है, तातें तू श्रेष्ठ है ।

हे रामजी! जो समान आदिक कष्टके स्थान कहे, सो देखके सबको वैराग्य उपजता है,जो कछु नहीं मर जाना है, तिनमें जो कोउ श्रेष्ट पुरुष होता है, सो वैराग्यको दृढकर रखताहै, औ जो मूर्ख है, सो विषयमें आसक्तहो जाताहै, तातें जिसको अकारण वैराग्य उपजता है, सो श्रेष्ट है, हे रामजी । जो श्रेष्ठ पुरुषहैं सो अपने वैराग्य अरु अभ्यासकेबलकरके संसारबंधनतें मुक्तहो जाते हैं, जैसे हस्ती बंधनको तोरकेअपने बलसोंनिकस जाताहै, तब सुखी होता है, तैसे वैराग्य अभ्यासके बलकर बंधनतें ज्ञानी मुक्त होत हैं ।

हे रामजी । यह संसार बड़ा अनर्थरूपहै, जा पुरुषनें अपने पुरुपार्थ करके बंधनको नहीं तोऱ्या, तिनको राग-द्वेपरूपी अग्नि जरावत है, अरु जिस पुरुषनें अपने पुरुपार्थ करके शास्त्र औ गुरुको प्रमाण करके ज्ञानसाध्याहै, सो उस पदको प्राप्त भयेहैं तिनको आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक, ताप जलाय शकता नहीं, जैसे वर्षाकालमें बहुत वर्षा के होते वनको दावानल जलाय नहीं शकता, जैसे ज्ञानीको आध्यात्मिक आदि ताप कष्ट नहीं देता ।

हे रामजी । जिन श्रेष्ठ पुरुषनें संसारको विरस जान कर त्याग कियाहै, तिनको संसारका पदार्थ गिराय नहीं शकता अरु जो मूर्ख हैं तिनको गिराय देते हैं, जैसे आंधरी चलत तीक्ष्ण पवनके वेगसों वृक्ष गिर जाते हैं, परंतु कल्पवृक्ष गिरता नहीं तैसे हे रामजी । श्रेष्ठ पुरुष वही जिनका संसार विरस हो गयाहै, सो केवल आत्मतत्वकी इच्छा करके तिस परायण भयेहैं, तिनकहीं ब्रह्मविद्याका अधिकारहै, सोई उत्तम पुरुषहै, हे रामजी । तूं भी तैसा उज्जवल पात्रहै जैसे कोमल पृथ्वी में बीज होते हैं तैसे तुमको मैं उपदेश करता हौं, औ जिसको भोगकी इच्छाहै, ओ संसारकी ओर यत्न करताहै, सो पशुवत्है, श्रेष्ट पुरुष वहीहै, जिसको संसार तरने का पुरुषार्थ होता है ।

हे रामजी । प्रश्न तिनके पास कीयें, जानवेमें आवै जो मेरे प्रश्नका उत्तर देनेको समर्थहै औ जिसमें

उत्तर देवेका सामर्थ्य दिखवेमें नहीं आवै, तिससौं प्रश्न करना नहीं, औ उत्तर देनेको जो समर्थ देखियें, औ तिसके वचनमें भावना न होय, तब भी तिससों प्रश्न नहीं करियें; काहेतें जो दंभकर प्रश्न करनेमें पाप होता है; औ गुरु भी उपदेश तिनको करता है, जो संसारतें विरक्त होवै अरु केवल आत्मपरायणहोनेकी श्रद्धा होवै, अरु आस्तिकभाव होवै, ऐसा पात्र देखके उपदेश करै है.हे रामजी!जो गुरुअरु शिष्य दोनोंउत्तम होते हैं, तब वचन शोभते हैं, तुम उपदेशकाशुद्धपात्र हो, जेते कछु गुणशिष्यके शास्त्रमें वर्णनाकियेहैंसोसब तेरेमें पेयत हैं; औ मैं उपदेश करनेमें समर्थ हौं,तातें कार्य शीघ्र होवैगा ।

हे रामजी!शुभ गुणसाथ तेरी बुद्धि निर्मल होयरही है; तेरा जो सिद्धांतकासार वचन है सो तेरे हृदयमेंप्रवेश कर रहैगा,जैसाउज्जवल वस्त्रकोकेशरकारंगशीघ्र चढ जाताहै,जैसेतेरे निर्मलचित्त कोउपदेशकारंगलगेगा, सूर्यके उदयतें जैसे सूर्यमुखी कमल खिलतेहैंतैसे तेरी बुद्धिशुभ गुणकर खिलआई है. हे रामजी।जोकछु शास्त्र सिद्धांत आत्मतत्त्व मैं तुझको कहताहौं,तिसमें तेरी बुद्धि शीघ्र प्रवेशकरैगी; जैसें निर्मलजलमेंसूर्यकी कांति प्रवेश करत है,तैसी तेरी बुद्धि आत्मतत्त्वमेंशुद्धताकरके प्रवेश करैगी,

हे रामजी । मैं तेरे आगे हाथ जोरके प्रार्थना करत हौं, जो कुछ मैं तुझको उपदेश करता हौं, तिसविषेतू

आस्तिकभावना करियो, जो इन बचन करमेराकल्याण होवैगा, अरु जो तुझको धारणा न होवै,तौ प्रश्न मत करना .जोशिष्यकोगुरुकेवचनमेंआस्तिकभावनाहोती है, तिसका शीघ्र कल्याण होताहै, तातें मेरे वचनमें आस्तिकभावना करियो,औ जिसकर तूं आत्मपदको प्राप्त होवैगा सो मैं कहताहों,प्रथम तौ यह कर जो अज्ञानी जीवमें असत्य बुद्धि है; तिनका संग त्यागकर

अरु मोक्षद्वारके जो चार द्वारपालहैं, तिनसोंमित्रभावनाकर, जब तिनसो मित्रभाव होयगा तब वह मोक्षद्वारमें पहुंचाय देयँगे, तब आत्मदर्शन तुझकोहोवेगा, सो द्वारपालके नाम श्रवण कर, शम, संतोष, विचार, सत्संग, यह चारों द्वारपालहैं, जिन पुरुषनें इनको वश कियेहैं तिनको यह शीघ्र मोक्षरूपीद्वारके अंतर कर देते हैं, हे रामजी ! सो चारों वश न होवैं, तौ तीनको वश करले; अथवा दोको वश कर ले, अथवाएकको वश कर, जो एक वश होवैगा,तौचारोंई वश जायँगे, इस चारोंका परस्पर स्नेहहै, जहां एक आता है तहां चारों आयके रहते हैं , जो पुरुषनेंइनसों स्नेह किया है सो सुखी भये हैं, औ जिननें इसका त्याग किया है, सो दुःखी हैं, हे रामजी । यद्यपिप्राण का त्याग होवै, तौ भी एक साधन तौ बल करकेवश करना, एकके वश कियतें चारोंही वशी होयंगे, अरु तेरी बुद्धिमें शुभ गुणमें आयके निवास कियाहै,जैसे सूर्यमें सब प्रकाशआय हुवेहैं, तैसे संतनेंअरुशास्त्रनें

जो निर्मल गुण कहे हैं, सो सब तेरे में पैयत हैं हे रामजी! अब तू मेरे वचनका अधिकारी भया है, जैसे तंद्री के सुनने को अंदेशा अधिकारी होता है, जैसे चंद्रमाके उदयतें चंद्रवशी कमल खिल आते हैं, तैसे शुभ गुणकर तेरी बुद्धि खिल आई है,

हे रामजी! सत्संग अरु सच्छास्त्रद्वारा बुद्धिको तीक्ष्ण कियेतें शीघ्र आत्मतत्त्वमें प्रवेश होता है, तातें श्रेष्ठ पुरुष वही हैं, जिनने संसार को विरस जानके त्याग किया है, अरु संत अरु सच्छास्त्रके वचन द्वारा आत्मपद पावनेका यत्न करते हैं, सो अविनाशी पदको प्राप्त होते हैं औ जो शुभमार्ग त्याग करके संसारकी ओर लगे हैं, सो महामूर्ख जड़ हैं, जैसे जल शीतलताकरके बरफ हो जाता है, तैसे अज्ञानी मूर्खता करके दृढ आत्ममार्गतें जड़ होइ रहे हैं. हे रामजी! अज्ञानीके हृदयरूपी बिलमें दुराशारूपी सर्प रहता है, सो कदाचित् शांति नहीं पावता, अरु आनंदसों कबहुं प्रफुल्लित नहीं होता, अरु आशा करके सदा संकुचित रहता है, जैसे अग्निविषे मांस सँकुच जाता है, हे रामजी! आत्मपदके साक्षात्कारमें विशेष आवरण आशाही है; जैसे सूर्यके आगे मेघका आवरण होता है, तैसे आत्मतत्वके आगे दुराशा आवरण है, जब आशारूपी आवरण दूर होवै, तब आत्मपदका साक्षात्कार होवै, हे रामजी! आशा तब दूर होवै, जब संतकी संगति अरु सच्छास्त्रका विचार होवै।

हे रामजी ! संसाररूपी एक बड़ा वृक्ष है, सो बोधरूपी खड्गकर छेद्या जाताहै, जब सत्संग अरु सच्छास्त्रकर तीक्ष्णबुद्धि होवै, तब संसाररूपी भ्रमका वृक्ष नष्टहो जाताहै, जब शुभ गुण होतेहैं, तब आत्मज्ञान आयके विराजताहै, जहां कमल होते हैं, तहां भौंरे आयके स्थित होते हैं तब शुभ गुणमें आत्मज्ञान रहता है, हे रामजी ! शुभ गुणरूप पवनकर जब इच्छारूपी मेघ निवृत होताहै; तब आत्मरूपी चंद्रमाका साक्षात्कार होताहै, जैसे चन्द्रमाके उदय हुवे आकाश शोभताहै, तैसे आत्माके साक्षात्कार हुवे तेरी बुद्धि खिलैगी ।

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे वसिष्ठोपदेशो नाम एकादश सर्गः ॥११॥

द्वादशः सर्गः १२

अथ तत्त्वज्ञमाहात्म्य वर्णनं

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! अब तूं मेरे बचनका अधिकारीहै, काहेतें जो तप, वैराग्य, विचार, संतोष आदि जो शुभ गुण संत अरु शास्त्रने कहे हैं, सो सब तेरेमें पेयतहैं, तातें तू मेरे बचनको सुन, सो रज तम गुणको त्यागकर शुद्ध सात्विकवान् होकर सुन, राजस जो विक्षेप अरु तामस जो लय निद्रामें होतहै, सो दोउका त्याग करके सुन, जेते कछु जिज्ञासुके गुण शास्त्रमें वर्णन कियेहैं; सो सबकर तूं संपन्नहै, अरु जेते

कछु गुरुके गुण शास्त्रमें वर्णन कियेहैं,सोसब मेरेमें हैं, जैसे रत्नाकर समुद्र संपन्न है, तैसे मैं संपन्नहौं, तातेंमेरे वचनका तूं अधिकारीहै; औ मूर्खको मेरे वचनका अधिकार नहीं. हे रामजी। जैसे चंद्रमाके उदयतें चंद्रकांत मणि द्रवीभूत होता है, तब तामेंतें अमृत स्रवताहै, औ पत्थरकी शिलाहै तिनमें द्रवीभूत नहीं होताहै, तैसे जो जिज्ञासु होताहै, तिसको परमार्थवचन लगता है, अरु अज्ञानीको नहीं लगता, हे रामजी। शिष्यतौ शुद्ध पात्र होवै, अरु उपदेश करनेहारा ज्ञानवान न होवै तो उसका आत्माका साक्षात्कार नहीं होवे· जैसे चंदमुखी कमलिनी निर्मलहोय, अरु चँदमा न होय, तब प्रफुल्लित नहीं होती तैसे, तातें तूं मोक्षका पात्रहै, अरु मैं भी परमगुरुहौं। मेरे उपदेशकर तेरा अज्ञान नष्ट ह्वै जावैगा।

मैं मोक्षका उपाय कहता हौं,जब तिसको तूं भले प्रकार विचारैगा;तब जेतीकछु मलिनरूपी मनकी वृत्ति हैं ,तिनका अभाव होजायगा,जैसे महाप्रलयके सूर्यकर मंदराचल पर्वत जल जाताहै,तातें हे रामजी। वैराग्य अरु अभ्यासके बलकर इस मनको अपनेविषे लीनकर शांतात्मा होवहु;तैनें बालकावस्थासोंलेकर अभ्यासकर रख्याहै, तातें मन उपशम पायके आत्मपदको प्राप्त होवैगा.हेरामजी। सत्संगअरु सच्छास्त्रद्वारा जो आत्मपद पायाहै,सो सुखी भयेहैं, फिर तिनको दुःखनहीं लगता,काहेतें जो दुःख देहाभिमानकर होता है, सो

देहका अभिमान तो तैंने त्याग दिया है,तैसे जिसनें देहका अभिमान त्यागदियाहै,अरु देहका आत्मताकरके बहुरि ग्रहण नहीं करता,तातें सुखी रहताहै. हे रामजी। जिननें आत्माका बलधरके विचारद्वारा आत्मपद प्राप्त कियाहै, सो अकृत्रिम आनंदकर सदापूर्णहै, सबजगत तिसको आनंदरूप भासताहै अरुजो असम्यग्दर्शी हैं, तिनको जगत अनर्थरूप भासता है,हेरामजी। संसरणरूप जोयह संसारसर्प है,सो अज्ञानीके हृदयमें दृढहोगयाहै, सो योगरूपी गारुडमंत्रकरके नष्ट होजाताहै; अन्यथा नहीं होता, औ सर्पका विषहै, सोएक जन्ममें मारता है; अरु संसरणरूपजो विष है तिसकरके अनेक जन्मपायके मारताचल्या जाताहै; शांतिवान कदाचित नहीं होता।

हे रामजी!जो पुरुष सत्संग अरु सच्छास्त्रके वचनद्वारा आत्मपदको पायाहै, सो आनंदित भयाहै, अरु अंतर्बाहिर सबजगत् इन को आनंदरूप भासताहै;अव सब क्रिया करनेमें आनंदविलास हैऔ जिसनें सत्संग अरुसच्छास्त्र का विचार त्यागयाहै,अरुसंसारकेसन्मुख है तिसकर तिसको संसार अनर्थरूप है सो ऐसा दुःख देते हैं; जेसेसर्पके दंशतें दुःखी होते हैं; अरु शस्त्रकर घायल होते हैं; अरु अग्निमें परेकी नाई जलतेहैं,अरु जेवरीसाथ बंध होते हैं, अरु अंधकूपमें गिरतें कष्टपाते हैं;तैसे संसारमें मनुष्य दुःख पातेहैं. हे रामजी ! जो पुरुषसत्संगअरु सच्छास्त्रद्वारा आत्मपदको नहींपाया,

सो ऐसे कष्टपातेहैं, जो नरकरूपी अग्निमें जरतेहैं, अरु चक्कीविषे पिसातेहैं, पाषाणकी वर्षाकर चूर्ण होतेहैं; कोल्हमें पिलातेहैं, अरु शस्त्रसाथकटतेहैं; इत्यादिकजो बड़े कष्टहैं, सो तिनको प्राप्त होतेहैं, हेरामजी ! ऐसा दुःख कोउ नहीं ! जो इस जीवको प्राप्त नहीं होता; आत्मोकेप्रमादमें सबदुःख होते हैं, अरु जिन पदार्थको यह रमणीय जानतेहैं, सोचक्रकी नांईहै चंचल; कबहु स्थिर नहीं रहते, सन्मार्गको त्यागकर जो इनकी इच्छा करते हैं, सो महादुःखको प्राप्त होतेहैं, अरुजिन पुरुषनें संसारको विरस जान्याहै, औ पुरुषार्थकी ओर दृढ भयेहैं, तिनको आत्मपदकी प्राप्ति होती है।

हे रामजी ! जो पुरुषको आत्मपदकी प्राप्ति भई है, तिनको फिर दुःखनहीं होता, औ तिनके दुःखजो नष्ट नहीं होते, तौ ज्ञानके निमित्त पुरुषार्थ कोउ नहीं करता, जो अज्ञानी हैं तिनको संसार दुःखरूपहै, अरु ज्ञानीको सब जगत आनंदरूप है, अपने आपइ है, उनको भ्रम कोउ नहीं रहता, हेरामजी ! ज्ञानवान् में नानाप्रकारकी चेष्टाभी दृष्ट आती है, तौ भी सदा शांतरूप है, अरु आनदरूपहै, संसारका दुःख कोउ नहीं स्पर्श कर शकता, काहेतें जोजिननें ज्ञानरूपी कवच पहिन्या है।

हेरामजी! ज्ञानवानको भी दुःख होता है, बड़े बड़े ब्रह्मर्षि अरु राजर्षि बहोत ज्ञानवान् भयेहैं सोहु दुःखको प्राप्त होते हैं, परंतु दुःखसों आतुर नहीं होते, क्यों जो

ज्ञानवान्ने ज्ञानका कवच पहिन्याहै तातें कोउ दुःख स्पर्श नहीं करता,सदा आनन्दरूपहै,जैसे ब्रह्मा,विष्णु रुद्रनानाप्रकारकी चेष्टाकरते और जीवको दृष्टआवतेहैं अरुअंतरतें सदा शांतरूप है,इसप्रकार औरभीजोज्ञान वान उत्तम पुरुषहैंसो शांतरूप हैं,ताको कर्ताकाअभिमान कोउ नहीं फुरता.हेरामजी!अज्ञानीरूपी जो मेघ है,तिसकर मोहरूपी कुहाड़ाका वृक्षहै, सो ज्ञानरूपी शरत्काल करके नष्ट हो जाताहै; तातें स्वसत्ताकोप्राप्त होत है,अरु सदा आनंदरूप पूर्णहै. हे रामजी! जो कछु क्रिया करतेहैं सो तिनको विलासरूप हैं, अरुसब जगत आनंदरूपहै,अरु शरीररूपी रथ,इंद्रियरूपी अश्व औ मनरूपी रसा, तासे अश्वको खेंचता है,अरु बुद्धिरूपी रथ वहीहै,तिस रथमें वह पुरुष बैठा है; अरु इंद्रियरूपी अश्व इसको खोटेमार्गमें डारतेहैं,अरु ज्ञानवानके इंद्रियरूपी अश्वहैं सो ऐसे हैं, जो जहां जाते हैं,तहां आनंदरूप हैं;किसी ठौरमें खेद नहीं पावता; सब क्रियामें उनको विलास है; सर्वदा आनंदकर तृप्त रहते हैं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षु प्रकरणे तत्त्वज्ञमाहात्म्यं नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

त्रयोदशः सर्गः १३

अथ ज्ञानवर्णनं ।

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! इसी दृष्टीको आश्रय कर, जो तेरा हृदय पुष्ट होवै, बहुरि संसारके इष्टअनिष्टकर चलायमान न होवै, जिस पुरुषको इस प्रकार आत्मपदकी प्राप्ति भई, सो परम आनंदित भया है, शोकको कर्ता नहींहै, न याचना करता है हेयोपादेयते रहित परमशांतिरूप अमृतकर पूर्ण होय रहे हैं, सो पुरुष नानाप्रकारकी चेष्टा करते दृष्टआवतेहैं, परंतु कछु नहीं करते, जहां उनके मनकी वृत्ति जातीहै, वहां आत्मसत्ता भासती है, सो आत्मानंदकर पूर्ण होय रहे हैं, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा अमृतकरि पूर्ण रहता है, तैसे ज्ञानवान् परमानंदकरि पूर्ण रहता है, हे रामजी ! यह जो मैं तुझको अमृतरूपी वृत्ति कही है, इसको जब जानैगा तब तुझको साक्षात्कार होवैगा, जब जिसको आत्मज्ञानकी प्राप्ति होतीहै, तब सब दुःख नष्ट हो जाते हैं, जैसे चंद्रमाके मंडलमें ताप नहीं होता अरु अज्ञानीको शांति कबहु नहीं होती, औ जो कछु क्रिया करता है, तिसमें दुःख पावता है, जैसे कण्टकके वृक्ष में

कंटककी उत्पत्ति होतीहै,तैसे अज्ञानीकोदुःखकी उत्पत्ति होती है.

हे रामजी ! इस जीवको मूर्खता करके बडे दुःखप्राप्त होतेहैं, ऐसा दुःख अद्भुत और कोउ नहीं,अरु किसी आपदा करकेभी ऐसा दुःख नहीं होता,जैसादुःखमूर्खता करते पाते हैं, ऐसा दुःख कोउ नहीं, हेरामजी ! हाथमें ठीकरा ले चंडालके घरकी भिक्षा ग्रहणकरै,औ आत्मतत्वकी जिज्ञासा होवै, तौ भी अवर ऐश्वर्यतें श्रेष्ठ है, परंतु मूर्खतासों जीवना व्यर्थहै तिस मूर्खताको दूरकरनेको मोक्ष उपाय मैं कहता हौं ।

हे रामजी । यह मोक्षउपाय परमबोधका कारण है, कछुक बुद्धि संस्कृत होवै, अर्थ यह जो पदार्थके जाननेहारी होवै,अरु मोक्षउपाय शास्त्रको विचारै, तौ तिसकी मूर्खता नष्ट हो जावैगी,अरु आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी, जैसा आत्मबोधका कारणयहशास्त्रहै,तैसाऔर शास्त्र त्रिलोकीविषेकोउनहीं,नानाप्रकारकेदृष्टांतसहितइतिहास हैं जामें तिसको जब विचारैगा तब परमानंदको प्राप्त होवैगा,अज्ञानरूपी तिमिर नाश करनेको ज्ञानरूपी शलाका है, जैसे अंधकारको सूर्य नाश करताहै, तैसे अज्ञानको यह शास्त्रका विचार नाश करताहै, हे रामजी । जिस प्रकार इसका कल्याण होता है, सो

श्रवण कर, गुरु जो ज्ञानवान है, सो शास्त्रका उपदेश करै अरु अपने अनुभवसों ज्ञान पावै, जब गुरु अरु शास्त्र औ अपना अनुभव यह तीनों इकट्ठे मिलें तब इसका कल्याण होवै, जबलग अकृत्रिम आनंदको प्राप्त नहीं भया, तबलग दृढ अभ्यास करै, तिस अकृत्रिम आनंदको प्राप्ति करनेहारा मैं गुरु हों, जीवमात्रका मैं परम मित्र हों, ऐसा मित्र अवर कोउ नहीं, हमारि संगति जीवको आनंद प्राप्त करनेहारी है, तातें जो कछु मैं कहता हों सो तूं कर।

हे रामजी! यह जो संसारके भोगहैं, सो क्षणमात्रहैं, तातें इनको त्याग करहु, औ विषयके परिणाममें दुःख अनंत हैं, इनको दुःखरूप जानकर त्यागदे, अरु हमसारिखे हो ज्ञानवानका संग कर औ हमारे वचनके विचारतें तेरे सब दुःख नष्ट हो जायेंगे, हे रामजी। जिस पुरुषनें हमारे संग प्रीति करीहै, जिसको हमनें आनंदपदकी प्राप्तिकर दीनीहै, जिसआनंदतें ब्रह्मादिक आनंदित भये हैं, औ आनबाहु आनंदित भयहैं सो निर्दुःखपदको प्राप्त भये हैं, हे रामजी। श्रेष्ठ पुरुष सोई है, जानें हमारे साथ प्रीति कीनीहै, जिसनें संतअरुशास्त्रके विचारद्वारा दृश्यको अदृश्य जान्याहै, अरु निर्भय हुवाहै, आत्माका प्रमाद जीवकोदीनकरताहै, अज्ञानीकाहृदयरूपी कमल तबलगसकुच्यारहताहै, जबलगतृष्णारूपी रात्र होती है, जब ज्ञानरूपी सूर्य उदय होता है, तब तृष्णारूपी रात्र नष्ट हो जाती है, अरु हृदयरूपी कमल आनंदकर खिली आते हैं,

हे रामजी! जो पुरुषने परमार्थमार्गको त्याग्या है, अरु संसारके खानपान आदि भोगमें मग्नहुवाहै,तिनको तूं मेंडुक जान,जैसे कीचमें मेंडुक पर्यो शब्द करता है,तैसा वह पुरुष है, हे रामजी! यह संसार बडा आपदाका समुद्रहै,तातेंजो कोउ श्रेष्ठ पुरुष है, सो सत्संगअरु सच्छास्त्रके विचार करके संसारसमुद्रउल्लंघताहै,अरु परमानन्दको प्राप्त होताहै, आदि, अंत मध्य रहित निर्भयपदको प्राप्त होताहै। अरुजो संसारसमुद्रके सन्मुख हुवाहै, सो दुःखतें दुःखरूप पदको प्राप्त भयाहै, कष्टतें नरकको प्राप्त होताहै; जैसे विषको विष जान तिसका पान करताहै, सो बिष उसकोनाश करताहै, तैसे जो पुरुष संसार असत्य जानके बहुरि संसारके ओर यत्न करताहै, सो मृत्युको प्राप्त होताहै हे रामजी! जो पुरुष आत्मपदतें विन्मुख है, अरु आत्मपदको कल्याणरूप जानताहै, अरु आत्मपदके अभ्यासका त्यागकर संसारकी ओर धावताहै; सो जैसे किसीकेघरमें अग्नि लगी,अरुतृणका घर अरुतृणकी शय्या करीके शयन करताहै, सो जैसे नाशको पावै तैसे जन्ममृत्युको प्राप्त होवहिंगे, औ संसारके पदार्थ देखकर रागदोषवान हुवेहैं, सोसुख बिजुरीका चमका जैसा है,औ जो होयके मिट जावै, स्थिर नहीं रहै; तैसा संसारका दुःख आगमापायी है।

हे रामजी!यह संसार अविचार करके भासता है,

अरु विचार कियेतें लीन होजाताहै; विचार कियेतें लीनजो नहीं होता,तौतुमको उपदेश करनेका काम नहीं था; सो तौ विचार कियेतें लीन होजाता है, इसी कारणेंत पुरुषार्थ चाहियें,जैसे हाथमें दीपक होवे, अरु अंध होय कूपमें गिरै सो मूर्खताहै. जैसे संसारभ्रमके निवारणहारेगुरु शास्त्रविद्यमानैंह,तिनकीशरण न आवै सो मूर्खहै. हे रामजी। जो पुरुष संतकी संगति, अरु सच्छास्त्रके विचारद्वाराआत्मपदको पाया है,सो पुरुष केवल कैवल्यभावको प्राप्त भया; अर्थ यह जो शुद्ध चैतन्यको प्राप्त हुवा है;अरु संसारभ्रम तिसका निवृत्त हो गया है।

हेरामजी। यह संसार मनके संसरणतें उपज्याहै, सो इसका कल्याण बांधव करके नहीं होवाहै; अरु धन करके भी नहीं होता है पूजा करके भी नहीं होता है. अरु तीर्थ अरु देवद्वार करके भी नहीं होताहै, ऐश्वर्य करके भी नहीं होता है,एक मनके जीतनेतें कल्याण होताहै ।

हे रामजी!जिसको ज्ञानी परमपद कहतेहैं,औ जिसको रसायण कहते हैं;जिसके पायेतें इसका नाशनहीं होय अरु अमर होवै, अरु सब सुखकी पूर्णता होवै, इसकासाधन समता अरु संतोषहै इनकर ज्ञान उत्पन्न होताहै, सो ज्ञानरूपी एक वृक्ष है. तिसका फूल शांति है अरु स्थित इसका फलहै. जिस पुरुषको यह ज्ञान

प्राप्त हुआ है; सो शांतिवानहुआहै; सो निर्लेप रहता है, तिसको संसारका भावाभावरूप स्पर्श नहीं है, जैसे आकाशमें सूर्य उदय होता है, तब जगतकीक्रिया होतीहै, फिरजबसो अदृश्य होता है, तब जगत की क्रियाभी लीन होजातीहै. जैसे क्रिया होने न होनेमें आकाश ज्यों का त्योंहै. तैसे ज्ञानवान् सदानिर्लेप है, तिस आत्मज्ञानकी उत्पत्तिका उपाय यह मेरा श्रेष्ठ शास्त्र है ।

हेरामजी! जो पुरुष इस मोक्षोपाय शास्त्रको श्रद्धासंयुक्तपढे अथवा सुनैतो वाईदिन सो मोक्षका भागीहोय रहै, अरु मोक्षके चार द्वारपालहैं सोमैं तुझको कहता हौं; सो इनमेंतें एकहु जब अपनेवश होय तब मोक्षद्वारमें इसका शीघ्र प्रवेश होवै, सो चारोंका नाम कहौंसो सुन हे रामजी! यह शम इसकोपरम विश्रामका कारण है, अरु यह संसार जो दिखताहै, सो मरुस्थलकीनदीवतहै; इसको देखकर मूर्ख अज्ञानरूपी जोमृग हैं, सो सुखरूप जल जानकर दौरतेहैं अरु शांतिको नहींप्राप्त होते, जब शमरूपी मेघकी वर्षा होवै तब सुखी होवै, हे रामजी! शमही परम आनंदहै, अरु शमही परमपद है; औ शिवपदहै, जिस पुरुषनें शम पायाहै, सो संसारसमुद्रतें पार हुवाहै; तिसको शत्रुसो मित्रहो जाते हैं । हे रामजी! जब चंद्रमा उदय होता है. तब अमृतकी कणा फुटतीहैं अरु शीतलता होती है, तैसे जिसके हृद-

यमें शमरूप चंद्रमा उदय होताहै, तिसके सब ताप मिट जाते हैं, अरु परम शांतिवान होते. हे रामजी! शम देवताके अमृतसमान है, वही परम अमृतहै, शम करके इसको परम शोभा प्राप्त होती है, जैसे पूर्णमासीके चंद्रमाकी कांति परम उज्जवल होतीहै, तैसे शमको पायके उसकी उज्जवल कांति होती है, जैसे विष्णुके दो हृदय हैं, सो एकतो अपने शरीरमें है दूसरा संतमें है, तैसे इसके दो हृदय होते हैं, एक अपने शरीरमें, दूसरा शमभी इसका हृदय होताहै, ऐसा आनंद अमृतके पान कियेतेंहु नहीं होता अरु लक्ष्मीकी प्राप्तितें भी नहीं होता, जो आनंद शमवानको होता है।

हे रामजी! प्राणहुतेंभी प्रियकोई होवै सो अंतर्ध्यान-कर फिर प्राप्त पावै, तैसा आनंद नहीं होवै. जैसा आनंद शमवानको होवै; तिसके दर्शनकरभीआनंद प्राप्तहोता है, अरुऐसा आनंद राजाको भी नहीं होता, जो बाहिरतें श्रेष्ठमंत्री होताहै अर अंतरतें सुंदर स्त्रियां होती हैं, तिनकरभी ऐसा आनंद नहीं होता, जैसा आनंदशम संपन्न पुरुषको होताहै. हे रामजी! जिस पुरुषको शमकी प्राप्ति भईहै, सो बंदना करने योग्य है, अरु पूजने योग्यहै, जिसको शमकी प्राप्ति भई है, तिसको उद्वेग नहींआवै, अरु लोकहुतें उद्वेग नहीं पावै, उसकी क्रिया अमृतसमान है, अरु बचनभी उसके अमृतकी नाई

मीठे हैं, जैसे चन्द्रमाके किरण शीतल अरु अमृतरूप हैं, सो सबको हृदयारामहैं, तैसे संतजन के वचनहैं, जिस पुरुषको शमकी प्राप्ति भईहै, तिसकी संगति जब इस जीवको प्राप्ति होतीहै, तब सबपरम आनंदित होतेहैं, हे रामजी ! जैसे बालक माताको पायके आनंदित होता है, तैसे जिसको शमकी प्राप्ति भई है तिसके संग-कर जीव अधिक आनंदवान होता है, जैसे किसका बांधव मुवा हुआ फिर आवै, औ इसको आनंद प्राप्त होवै, तिसतेंभी अधिकआनंद शमसंपन्न पुरुषको पायके होता है, हे रामजी ! ऐसा आनन्द चक्रवर्ती राज्यके पायेतें भी नहीं होता, अरु त्रिलोकीका राज्य पायेतेंभी नहीं होता, जिसको शमकी प्राप्ति भई है, तिसके शत्रु भी मित्र हो जाते हैं, तिसकर कछु भय भी नहीं होता, अरु सर्पका भयभी तिसको नहीं रहता, सिंहका भयभी तिसको नहीं रहता, औरहु किसी का भय नहीं रहता, सदा निर्भय शांतरूप रहता है, हे रामजी ! जो कोउ कष्ट आय प्राप्त होवै, औ कालकी अग्नि आय लगै, तौ भी सो चलायमान नहीं होता, सदा शांतिरूप रहता है, जैसे शीतल चांदनी चन्द्रमामें स्थित है, तैसे जो कछु शुभ गुण अर संपदा है, सो सब शमवान के हृदय में आय स्थित होते हैं ।

हे रामजी ! जो पुरुष आध्यात्मिकादि तापकर जलता

है, तिसको हृदयमें समकी प्राप्ति होवै, तब ताप मिट जाते हैं, जैसे तप्त पृथ्वी वर्षाकरके शीतल हो जातीहै, तैसे उसका हृदय शीतल हो जाताहै, जिसको शमकी प्राप्ति भई है, सो सब क्रियामें आनंदरूपहै, तिसको दुःख कोउ नहीं स्पर्श करता; जैसे वज्र शिलाको वाण वेध नहीं शकता, तैसे जिस पुरुषनें समरूपी कवच पहिन्या है, तिनको आध्यात्मिकादि ताप वेध नहीं शकता, वह सर्वदा शीतलरूप रहता है।

हे रामजी! तपस्वी, पंडित, याज्ञिक, धनाढ्या, सो पूजा मान्य करने योग्य हैं, परंतु जिसको शमकी प्राप्ति भईहै सो सबसें उत्तमहै, सो सबको पूजने योग्यहै; उसके मन की वृत्ति आत्मतत्त्वको ग्रहण करतीहै, शमकर पूर्ण है; अरु सब क्रियानमें सोहतहै; जिस पुरुषको शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, यह इंद्रियके विषय इष्ट अनिष्टमें राग-द्वेष नहीं होता, तिसको शांतिवान कहतेहैं, हे रामजी! जो संसारके रमणीय पदार्थमें बध्यमान नहीं होता, अरु आत्मानंदकर पूर्णहै, तिसको शांतिवान कहते हैं; वाको संसारके शुभ अशुभकर मलिनपना नहीं लगता, सदा निर्लेप रहता है, जैसे आकाश सब पदार्थतें निर्लेप है तैसे शांतिवान सदा निर्लेप रहताहै, हे रामजी! ऐसा जो पुरुष है सो इष्ट विषय की प्राप्ति में हर्षवान होता नहीं अरु अनिष्ट विषयकी प्राप्तिमें शोकवान् होता नहीं,

अरु अंतरतें सदा शांत रहता हैं ,उसको कोउ दुःख स्पर्श नहीं करता, अपने आपमें सदा परमानंदरूप रहता है, जैसे सूर्यके उदय हुवे अंधकार नष्टहो जाता है, तैसे शांतिके पाये सब दुःख नष्टहो जात हैं,सदा निर्विकार रहताहै ।

हे रामजी ! सो पुरुष सब चेष्टा करतें दृष्ट आताहै, परंतु सदा निर्गुणरूपहै; कोउ क्रिया उसको स्पर्श नहीं करती, जैसे जलमें कमलनिर्लेपरहता है, तैसे शांतिवान् सदा निर्लेप रहता है, हे रामजी ! जो पुरुष बडी राजसंपदाको पायकर अरु बडी आपदाको पायकर ज्योंकात्यौं अलग रहताहै, सो शांतिवान कहियें, हे रामजी ! जो पुरुष शांतितें रहितहै, तिसका चित्त क्षण क्षण रागद्वेषकर तपता है; अरु जिसको शांतिकी प्राप्ति भईहै, सो अंतर्बाहिर शीतलहै; अरु सदा एकरसहै; जैसे हिमालय सदा शीतल रहताहै, तैसे वह सदा शीतल रहता है, वाके मुखकी कांति बहोत सुंदरहो जातीहै, तैसे निष्कलंक चंद्रमा होवे, तैसे शांतिवान् निष्कलंक रहता है, हे रामजी ! जिसको शांति प्राप्त भई है, सो परम आनंदित हुवे हैं; परम लाभ तिसको प्राप्त होत हैज्ञानी इसको परमपद कहते हैं जिसको पुरुषार्थ करना है, तिसको शांतिकी प्राप्ति करनी चाहिये. हे रामजी जैसे

मैंने कहा है, तिस क्रम करके शांति का ग्रहण करो तब संसारसमुद्रके पार पहुंचोगे, ।

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षु प्रकरणे शमनिरूपणं नाम त्रयो दशः सर्गः ॥ १३ ॥

चतुर्दशः सर्गः १४

अथ विचारवर्णनं

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी! अब विचार का निरूपण सुन। जब हृदय शुद्ध होता है, तब विचार होता है, अरु शास्त्रार्थ विचारद्वारा बुद्धि तीक्ष्ण होती है, हे रामजी! अज्ञानरूपी जो वन है. तिसमें आपदारूपी वल्लीकी उत्पत्ति होती है; तिसको विचाररूपी खङ्गकर के काटैगा, तब शांत आतमा होवैगा, अरु मोहरूपी हस्ती है, सो जीवके हृदयकमल का खंड २ करडारताहै. अभिप्राय यह जो इष्ट अनिष्ट पदार्थमें रागद्वेषकरछेद्या जाता नहीं; जब बिचाररूपी सिंह प्रगटै तब मोहरूपी हस्तिका नाश करै; फिर शांतात्मा होवै।

हे रामजी। जिसको कछु सिद्धता प्राप्त हुई है, सो विचार अरु पुरुषार्थकर भई है, जो राजा होताहैसोप्रथम विचार कर पुरुषार्थ करता है, तिसकर राज्यको प्राप्त

होता है, बल, बुद्धि अरु तेज, चतुर्थ जो पदार्थका आगमन, अरु पंचम पदार्थकी प्राप्ति होती है सो पांचोंकी प्राप्ति विचारकर होती है, अर्थ यह जो इंद्रियोंका जितना अरु बुद्धिसो आत्मव्यापिनीअरुतेजपदार्थका आगमन इनकी प्राप्ति विचारसो होती है, हे रामजी ! पुरुषने विचारका आश्रय लिया है, सो विचारकी दृढता करके जिसकी बांछा करते हैं, तिसको पावते हैं; तातें विचार इसका परम मित्र है; जो विचारवान पुरुष है सो आपदामें मग्न नहीं होता; जैसे तुंबी जलमें डुबत नहीं, तैसे वह आपदामें डुबत नहीं, हे रामजी ! वह विचारसंयुक्त जो करता है, देता है, लेता है, सो सब क्रिया सिद्धताका कारणरूप होती है, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ये विचारकी दृढता करके सिद्ध होते हैं, विचाररूपी कल्पवृक्ष है, तिसमें जिसका अभ्यास होता है, सोई पदार्थकी सिद्धिको पावता है,

हे रामजी ! शुद्ध ब्रह्मका विचार ग्रहणकर आत्मज्ञानको प्राप्त होहु; जैसे दीपकसोंकर पदार्थका ज्ञान होता है, तैसे पुरुषविचारसोंकर सत्य असत्यकोजानता है, असत्यको त्यागकर सत्यकी ओर यत्न कियाहै, सो विचारवान कहतेहैं. हे रामजी ! संसाररूपी समुद्रविषे आपदारूपी तरंग चलते हैं, जो विचारवान पुरुष है, सो संसारके भावअभावमें कष्टवान नहीं होता है; जो

कछु विचारसंयुक्त क्रियाहोती है, तिसका परिणामसुख है, जो विचारविना चेष्टा होती है, तिसकर दुःख प्राप्तहोताहै, हे रामजी! अविचाररूपी कंटकवृक्ष है, तिसमें दुःखरूपी कण्टक पडे उत्पन्न होते हैं, अरु अविचाररूपीरात्रि है, तिसमें तृष्णारूपी पिशाचिनी आय विचरती है, जब विचाररूपी सूर्य उदय होता है, तब अविचाररूपी रात्रि अरु तृष्णारूपी पिशाचिनी नष्ट हो जाती है,

हे रामजी! हमारा यही आशीर्वाद है, जो तुमारे हृदयसो अविचाररूपी रात्र नष्ट होहु, विचाररूपी सूर्य करके अविचारित संसारदुःखका नाश होता है, जैसे बालक अविचार करके अपने परछैयाको बैताल कल्पके भयको पावता है, अरु विचार कियेतें भय नष्ट हो जाता है, तैसे अविचार करके संसारदुःखको देता है। औ सच्छास्त्रयुक्तिकर विचारकियेतें संसारभय नष्ट हो जाता है, हे रामजी! जहां विचार है, तहां दुःख नहीं है, जैसे जहां प्रकाश होता है, तहां अंधकार नहीं रहता है, जहां प्रकाश नहीं तहां अंधकार रहता है, तैसे जहां विचार है, तहां संसारभय नहीं है, अरु जहां विचार नहीं, तहां संसारभय रहता है. अरु जहां आत्मविचार उत्पन्न होता है, तहां सुखको देनहारे शुभ गुण आय स्थित होते हैं, जैसे मानससरोवरमें कमलकी उत्पत्ति

होती है, तैसे विचारमें शुभगुणकी उत्पत्ति होती है. जहां विचार नहीं तहां दुःखका आगमन होता है.

हे रामजी ! जो कछु अविचारकर क्रिया करतेहैं;सो दुःखका कारण होता है; जैसे चुहा बीलको खोदके मृत्तिका निकसता है, सो जहां इकट्ठी होती है, तहां बेलीकी उत्पत्ति होती है, तैसे अविचारकर यह पुरुष मृत्तिकारूपी पापक्रियाको इकट्ठी करताहै,तिसतें आपदारूपी बेली उत्पन्न होती है,अरु अविचाररूपीघुनाका खाया शूका बृक्ष है, तिसको सुखरूपी फल चाहतेहैं, तेउ नहीं निकसते हैं, सो विचार किसका नाम है? जिस करके शुभ क्रिया न होवै अरु जिसकर शास्त्रानुसार क्रिया होवै, तिजका नाम विचार है।

हे रामजी । विवेकरूपी राजाहै अरु बिचाररूपी ध्वजा है,जहां विवेकरूपी राजा आता है, तहां विचाररूपी ध्वजा तिनकेसाथ फिरती है, अरु जहां विचाररूपी ध्वजा आती है, तहां विवेकरूपी राजा भी आताहै, जो पुरुष विचार करके संपन्न है, सो पूजनेयोग्य हैं, तिसको सब कोउ नमस्कार करते हैं, जैसे द्वितीयाके चंद्रमाको सब नमस्कार करते हैं, तैसे बिचारवानको सब नमस्कार करते हैं।

हे रामजी।हमारे देखत देखत अल्पबुद्धिहु विचारकी दृढतातें मोक्षपदको प्राप्त भये हैं, तातें विचारसबका

परममित्र है, विचारवान पुरुष अंतर्बाहिर शीतल रहता है, जैसे हिमालय पर्वत अंतर्बाहिर शीतल रहता है, तैसे वह भी शीतल रहता है, देख। विचार करके ऐसे पदको प्राप्त होता है, जो पद नित्य है, अरु स्वच्छ है, अनंत है, परमानंदरूप है, जिसको पायकर तिसके त्यागकी इच्छा होती नहीं और के ग्रहणकी इच्छा नहीं होती है; उनको इष्ट अनिष्ट विषय सब समान है, जैसे तरंगके होनेमें अरु लीन होनेमें समुद्र समान रहता है, तैसे विवेककी पुरुषको इष्ट अनिष्ट विषे समता रहती है, अरु संसारभ्रम मिट जाता है, आधाराधेयतें रहित केवल अद्वैततत्त्व उसको प्राप्त होता है,

हे रामजी। यह जगत अपने मनके मोहतें उपजता है, अरु विचारकर दुःखदायी दिखता है, जैसे अविचार करके बालकको बैताल भासता है, तैसे इसको जगत भासता है, जब ब्रह्मविचारकी प्राप्ति होवे, तब जगतभ्रम नष्ट हो जावे, हे रामजी। जिसके हृदयमें विचार होता है, तहां समताकी उत्पत्ति होती है, जैसे बीजतें अंकुर निकस आता है, जैसे विचारतें समता होत आती है, अरु विचारवान पुरुष जिसको ओर देखता है, तिस ओर आनंद दृष्ट आता है, दुःख कोउ नहीं भासता है, जैसे सूर्यको अंधकार दृष्ट नहीं आवता, तैसे विचारवानको दुःख दृष्टिमें नहीं आवता, जहां अविचार है तहां

दुःख है; जहां विचार है तहां सुख है; जैसे अंधकारके अभाव हुवे वैतालके भयका अभाव होजाताहै, तैसे विचार कियेतें दुःखका अभाव होजाता है।

हेरामजी! संसाररूपी दीर्घ रोगहैं,तिसका नाशकरनेका विचार बड़ा औषधहै, जिसको विचारकी प्राप्ति भईहै,तिसके मुखकी कांति उज्जवल हो जाती है, जैसे पूर्णमासीके चंद्रमाकी उज्जवल कांति होती है, तैसी विचारवान्के मुखकी उज्जवल कांति होतीहै. हे रामजी!!विचार करके इसको परमपदकी प्राप्ति होतीहै; जिसकरि अर्थ सिद्ध होवै,तिसका नाम विचार है.अरु जिसकरि अनर्थ सिद्ध होवै, तिसका नाम अविचारहै; अविचाररूपी मदिरा है जो इसका पान करताहै सो उन्मत्त होजाताहै, तिसतें शुभ विचार कोउ नहीं हो आवता,शास्त्रके अनुसार जो कछु क्रिया है, सोतातें नहीं होती,तातें अविचार करि अर्थ सिद्ध नहीं होता.

हे रामजी! इच्छारूपी रोगहै, सो विचाररूपी औषध करकेनिवृत्त होताहै,जिस पुरुषनें विचारद्वारा परमार्थसत्ताका आश्रय लियाहै, सो परम शांत हो जाताहै;अरु हेयोपादेयबुद्धि तिसकी नहीं रहती,सब दृश्यको साक्षिभूत होकर देखताहै,अरु संसारके भाव अभावविषे ज्योंका त्यौं रहताहै,अरु उदयअस्ततेंरहित निःसंगरूप है, जैसे समुद्र जलकर पूर्ण है, तैसे विचा-

रवान आत्मत्वकरि पूर्ण है, जैसे अंधकूपविषे पन्या हुवा हस्तके बलकरि निकसता है, जैसे संसाररूपीअंध कूपमें गिरन्याहुवा विचारके आश्रय होकर विचारवान् पुरुष निकसनेको समर्थ होता है।

हे रामजी। राज्यको जो कोउ कष्ट आय प्राप्तहोता है, तब उह विचारकरके यत्न करतेहैं, तब कष्ट निवृत्त हो जाताहै, तातें तूं विचारकर देख जोकिसीको कष्ट प्राप्त होताहै, सो विचारतें मिटता है, तुम विचारका आश्रय करके सिद्धिको प्राप्त होहु, सो विचारइसकर प्राप्त होताहै, जो वेद अरु वेदांतके सिद्धांतको श्रवण करै. पाठ करै. भले प्रकार विचारैगा तब विचारकीदृढ ताकर आत्मतत्त्वको प्राप्त होवेगा, जैसे प्रकाशकर पदार्थका ज्ञानहोताहै, तैसे गुरु अरु शास्त्रकेवचनकर तत्त्व ज्ञान होता है, जैसे प्रकाशमें अंधको पदार्थकी प्राप्ति नहीं होती है, तैसे गुरु अरु शास्त्रके जोविचारतेंशून्य होवै, तिसको आत्मपदकी प्राप्ति नहीं होती. हे रामजी जो विचाररूपी नेत्रकर संपन्न है, सोई देखते हैं, अरु विचाररूपी नेत्रतें जो रहित, सो अंध है।

हे रामजी। ऐसा विचार कर, जो मैं कवनहौं, अरु यह जगत् क्या है, अरु इसकी उत्पत्ति कैसी हुईहै, अरु लीन कैसे होताहै, इस प्रकार संत अरु शास्त्रके अनुसार विचारकर सत्यको जान, अरु असत्य को

असत्य जान,जिसको असत्य जान्याहै,तिसका त्याग कर, अरु सत्यमें स्थित होय इसी का नाम विचार है, इस विचारकर आत्मपदकी प्राप्ति होती है.हे रामजी! विचाररूपी दिव्य दृष्टि जिसको प्राप्त भई है, तिसको सब पदार्थका ज्ञान होता है, विचारसो आत्मपदकी प्राप्ति होती है, तिसको पायेतें परिपूर्ण होता है, फिर शुभअशुभ संसारमें चलायमाननहीं होता,ज्योंका त्यों रहता है,जबलग प्रारब्धवेग होताहै,तबलग शरीरकी चेष्टाहोतीहै;जबलग अपनी इच्छा होवै तबलग शरीरकी चेष्टाकरै,बहुरि शरीरको त्यागकर केवलशुद्धरूप हो जाता है।

तातें हे रामजी।ब्रह्मविचारको आश्रय कर संसारस मुद्रको तर जा, जो रोगी होता है, सो एता रुदन नहीं करता,जेता कछु रुदन विचाररहित पुरुष करता है, जिसको कष्ट प्राप्त होताहै, सोभी एता रुदननहीं करता. हे रामजी। जो पुरुष विचारतें शून्यहै,तिनको सब आपदा आय प्राप्त होती है,जैसे सब नदी स्वभावसों समुद्रमें आय प्रवेश करतीहैं,तैसे अविचारमें सब आपदा आय प्रवेश करतीहैं.हे रामजी!कीचका कीट होनासो भलाहै. अरु गर्तका कटक होना सोभीभला है,अरु आँधेरे बिलमें सर्प होना सो भला है, परंतु

विचारतें रहित होना सो तुच्छ है, जो पुरुष विचारतें रहितहै, अरु भोगमें दौरता है. सो श्वान है ।

हेरामजी ! विचारतें रहित पुरुष बड़े कष्टको पावता है, तातें एक क्षणहु विचारतें रहित नहीं रहना; विचारसो दृढ होकर निर्भय रहना;जो मैं कवन हौं, अरु दृश्य क्या है, ऐसा विचार करके सत्यरूप आत्माको जानकर दृश्यका त्याग करना. हे रामजी ! जोपुरुष विचारवान् है; सोसंसारभोगमें नहीं गिर जाता, अरु सत्यमेंई स्थित होताहै, विचार तब स्थित होता है, तब तिसमें तत्त्वज्ञान होताहै, तव तत्त्वज्ञानतें विश्राम होताहै,विश्रामतें चित्तका उपशम होताहै, अरु चित्तके उपशमतें दुःख नाश होना है ।

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे विचार निरूपणं नाम चतुर्दशः सर्ग १४

पंचदशः सर्गः १५।

अथ सन्तोष वर्णनं

वासिष्ठ उवाच–हे अविचारशत्रुके नाशकर्ता रामजी! जिस पुरुषको संतोष प्राप्त भयाहै, सो परम आनंदितहुयाहै, अरु त्रिलोकीका ऐश्वर्य उसको तृणकीनाई

तुच्छ भासता है. हे रामजी ! जो आनंद अमृतपान कियेतें नहीं होता है; औ जो आनंद त्रिलोकके राज्यकर नहीं होता, तैसा आनंद संतोषवानको होता है, हे रामजी! इच्छारूपी रात्रि है; अरु सो हृदयरूपी कमलको संकुचाय देती है, औ जब संतोषरूपी सूर्य उदय होता है, तब इच्छारूपी रात्रिका अभाव हो जाता है; जैसे क्षीरसमुद्र उज्ज्वलताकरके सोहता है, तैसे संतोषवानकी कांति सुशोभित होती है.

हे रामजी! त्रिलोकीके राजाकी इच्छा निवृत्त न भई, तब सो दरिद्री है, अरु जो निर्धन है, औ जो संतोषवान है, सो सबका ईश्वर है, संतोष तिसकाई नाम है, श्रवण-करि जो अप्राप्त वस्तुकी इच्छा न करे, अरु प्राप्त होइ इष्ट अनिष्टमें रागद्वेष न धरे, इसका नाम संतोष है, संतोष सोई परमपद है, संतोषवान पुरुष सदा आनंदरूप है, अरु आत्मस्थितिसों तृप्त हुवा है, तिसको और इच्छा कछु नहीं स्फुरती, अरु संतुष्टताकर तिसका हृदय प्रफु-ल्लित हुवा है, जैसे सूर्यके उदय हुवे सूर्यमुखी कमल-प्रफुल्लित होता है, तैसे संतोषवान प्रफुल्लित हो जाता है, जो अप्राप्त वस्तु है, तिनकी इच्छा नहीं करता, अरु जो अनिच्छित प्राप्त भई है, तिसको यथाशास्त्र क्रम करके ग्रहण करता है, तिसका नाम संतोषवान् है, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा अमृतकर पूर्ण होता है, तैसे संतो-

पवानका हृदय संतुष्टिकरके पूर्ण होता है. अरु जो संतोषतें रहित है,तिसके हृदयरूपी वनमें सदादुःख अरु चिंतारूपी फूल फल उत्पन्न होतेहैं हैं.

हे रामजी ! जाका चित्त संतोषतें रहित है, तिसको नानाप्रकारकी इच्छा जैसे समुद्रमें नानाप्रकारके तरंग होते हैं,तैसे उपजती है.संतुष्टात्मा परम आनंदित है, तिसको जगतके पदार्थमें हेयोपादेयबुद्धि नहीं होती. हे रामजी ! जैसा आनंद संतोषवानको होता है, तैसा आनंद अष्टसिद्धिके ऐश्वर्यकरके भी नहीं होता,अरु अमृतके पान कियेतें भी नहीं होता, संतोषवान् सदा शांतिरूप है,औ सदा निर्मल रहता है, इच्छारूपी धूर सर्वदा उडती थी सो संतोषरूपी वर्षाकर शांत हो गई है,तिस कारणतें संतोषवान् निर्मल है।

हे रामजी ! संतोषवान् पुरुष सबको प्यारा लगताहै; जैसे आंबका परिपक्व फल सुंदर होता है.अरु सबको प्यारा लगता है, तैसा संतोषवान् पुरुष सबको प्यारा लगता है;अरु स्तुतिकरनेयोग्यहै;जिस पुरुषको संतोष प्राप्त भया है तिसको परम लाभ भया है, हे रामजी ! जहां संतोष है,तहां इच्छा नहीं रहती है; अरु संतोष-वान् भोगमें दीन होकर नहीं रहता,वह उदारात्मा है, सर्वदा आनंदकर तृप्त रहता है,जैसे मेघ पवनकेआयेतें नष्ट हो जाता है;तैसे संतोषके आयेतें इच्छानष्ट हो

जातीहै; अरुजो संतोशवान पुरुष है, तिसको देवता, ऋषीश्वर, सब नमस्कार करते हैं; अरु धन्य धन्य कहते हैं. हे रामजी ! जब इस संतोषको धरैगा, तब परम शोभा पावैगा ।

इतिश्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे संतोषनिरूपणं नाम पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

षोडशः सर्गः १६

अथ साधुसंगवर्णनं

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! अवर जेते कछु दान तीर्थादिक साधनहैं, तिनकर आत्मपदकी प्राप्ति नहीं होती; साधुसंगकर आत्मपदकी प्राप्ति होती है, साधुसंगरूपी एक वृक्षहै, तिसका फूल आत्मज्ञान है, जिस पुरुषनें फूलकी इच्छा करीहै, सो अनुभवरूपी फलको पावताहै. हेरामजी! जो पुरुष आत्मानंदतें रहित है, सो संतसंगकर आत्मानंदसों पूर्ण होताहै, अरुअज्ञानकरके जो मृत्युको पावताहै, सो संतके संगतें ज्ञान पायकर अमरहोताहै; अरुजो आपदाकरके दुःखीहैसो संतकेसंगकर संपदाको पावताहै, आपदारूपी कमलका नाश करनहारी सत्संगरूपी बरफकी वर्षाहै, संतसंग-

सोकर आत्मा बुद्धि प्राप्त होती है, तिसकर मृत्युतें रहित होता है, औ सब दुःखतें रहित होता है, अरु परमानंदको प्राप्त होता है।

हे रामजी! संतकी संगतीकर इसके हृदय में ज्ञानरूपी दीपक जलता है, तिसकर अज्ञानरूपी तम नष्ट होजाता है, अरु बडे ऐश्वर्यको प्राप्त होता है, बहुरि किसी भोगपदार्थकी इच्छा नहीं रहती अरु बोधज्ञान होता है, सबतें उत्तम पदमें विराजता है, जैसे कल्पवृक्षके निकट गयेतें बांछित फलकी प्राप्ति होती है, तैसे संसारसमुद्र कूपार उतारने हारे संतजन हैं, जैसे धीवर नौकाकरके पार लगता है, तैसे संतजन युक्ति करके संसारसमुद्रतें पार करते हैं, अरु मोहरूपी मेघका नाश करनहारा संतका संग पवन है, जिनको देहादिक अनात्मासों स्नेह नष्ट भया है, अरु शुद्ध आत्माविषे जाकी स्थिति है, तिसकर तृप्त भये हैं, बहुरि संसारके इष्ट अनिष्टतें जाकी चलायमान बुद्धि नहीं होती, सदा समताभावमें स्थित रहे हैं, ऐसे संसार समुद्रके पार उतारने में पुल जैसे अरु आपदारूपी बेलीको जडसमेत नाश करनहार हैं।

हे रामजी! संतजन प्रकाशरूप हैं, तिनके संगतें पदार्थकी प्राप्ति होती है, अरु जो अपने पुरुषार्थ रूपी नेत्रसें हीन हुवे हैं, तिनको पदार्थकी प्राप्ति नही होती, जिन पुरुषनें सत्संगका त्याग किया है, सो नरकरूपी अग्निमें

लकडीकी नांई जरैंगे;अरु जिन पुरुषनें सत्संग कियाहै,
तिनको नरकरूपी अग्निका नाशकरनहारा सत्संगरूपी
मेघहै, हे रामजी ! सत्संगरूपी गंगा है; जाने सत्संग-
रूपी गंगाका स्नान किया ताको बहुरि तप,दान,आदि
साधनका प्रयोजन नहीं;उह सत्संग करके परमगतीको
प्राप्त होनेकोहै; तातें अवर सब उपाय त्यागकर सत्सं-
गको खोजनां,जैसे निर्धन चिंतामणि आदिक धनको
खोजताहै,तैसे मुमुक्षु सत्संगको खोजताहै, आध्यात्मि-
कादि तीन तापसों जलताहै,तिसको शीतल करनेहारा
सत्संगहै, जैसे तपी हुई पृथ्वी मेघ कर शीतल होती
है, तैसे सत्संगकर हृदय शीतल होता है ।

हे रामजी ! मोहरूपीवृक्षका नाशकरनहारा सत्संगरूप
कुहाडाहै,सत्संग करके यहपुरुष अविनाशी पदको प्राप्त
होताहै,जिस पदके पायेंते औरपावनेकी इच्छानहींरहती
ऐसा सबतेंउत्तम सत्संगहै;जैसे सब, अप्सरानतें लक्ष्मी
उत्तम है, तैसे सत्संगकर्ता सबतें उत्तम है, तातें अपने
कल्याणके निमित्त सत्संग करना तुमको योग्य है, हे
रामजी ! यह जो चरों मोक्षके द्वारहाल हैं,सो तुमको
कहे, जा पुरुषने इनकेसाथ प्रीति करी है, सो शीघ्र
आत्मपदको प्राप्त होहिंगे,औ जो इनकी सेवा नहींकरते
सो मोक्षको प्राप्त नहीं होते. हे रामजी । इन चारोंमेंसें
एकहु जहां आता है, तहां तीनों औरहु आय जाते

हैं, जहां समुद्र रहताहै, तहां सब नदीयां आय जाती हैं, जैसें जहां शम आता है, तहां संतोष, विचार, अरु सत्संग ये तीनों आय जाते हैं, जहां साधुसंगम होताहै, तहां संतोष, विचार अरु शम ये तीनों आय जातेहैं; जहां कल्पवृक्ष रहता है तहां सब पदार्थ आय स्थित होते हैं, अरु जहां संतोष आता है, तहां शम, विचार, सत्संग, ये तीनों आय जातेहैं, जैसे पूर्णमासीके चन्द्रमामें गुणकला सब इकट्ठी हो जातीं हैं, तैसे जहां संतोष आता है, तहां और तीनों आय जाते हैं, अरु जहां विचार आता है, तहां संतोष उपशम, अरु सत्संग ये आय रहते हैं, जैसे श्रेष्ठ मंत्रीसोंकर राज्यलक्ष्मी आय स्थित होती है, तैसे जहां विचार होताहै, तहां और भी तीनों आतेहैं, तातें हे, रामजी। जहां चारों इकट्ठे होते हैं, तहां परमश्रेष्ठता जानना, औ हे रामजी। चारों न होहीं, तौ एकका तौ अवश्य आश्रयकरना, जबएक आवेगा तब चारों आय स्थित होवेंगे, मोक्षकी प्राप्ति होनेकी यहचार परम साधनहैं, और उपायसों मुक्ति होनेकी नहीं।

श्लोकः

संतोषः परमो लाभः सत्संगः परमं धनं

विचारः परमं ज्ञानं शमं च परमं सुखम् ॥ १ ॥

हे रामजी! यह परम कल्याणकर्ता, सोइन चारोंकरि संपन्न है, तिसकी ब्रह्मादिक स्तुति करतेहैं, तातें दंतकों दंत लगाय इसका आश्रय करके मनको वशी करले।

हे रामजी! मनरूपी हस्ती विचाररूपी अंकुश करके वशहोताहै, अरुमनरूपी बनमें वासनारूपी नदी चलती है, जिसके शुभ अशुभ दोकिनारे हैं; अरु पुरुषार्थकरना यहहै, जोअशुभकी ओरतें रोकके शुभकी ओर चलावना; जब अंतर्मुख आत्माके सन्मुख वृत्तिका प्रवाह होवैगा, तब तूं परम पदको प्राप्त होवैगा, हे रामजी! प्रथमतौ पुरुषार्थकरना नहीहै, जो अविचाररूपी ऊंचाईको दूर करना; जब अविचाररूपी बेट दूर होवैगा, तब आपही प्रवाह चलैगा. हे रामजी! दृश्यकी ओर जो प्रवाह चलताहै, सो बंधनका कारणहै, जब आत्माकी ओरअंतर्मुख प्रवाह होवै, तब मोक्षका कारण होयजाय आगे जो तेरी इच्छा होवै सो कर।

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षु प्रकरणे साधुसंगनिरूपणं नाम षोडशः सर्गः ॥१६

सप्तदशः सर्गः १७

अथ शास्त्रप्रकरणवर्णनं

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! यह मेरे वचन हैं, सो परम पावनहैं,जो विचारवान् शुद्ध अधिकारी है, तिसको यह वचन परम बोधके कारणहैं; जो पुरुष शुद्धपात्र हैं,सोयह वचनको पायके सोहताहै,औ वचनहुउनको पायके शोभापावतेहैं, जैसे मेघके अभावतें शरत्कालमें चंद्रमा अरु आकाश सोहतेहैं,तैसे शुद्ध पात्रमें यहवचन शोभतेहैं,अरु जिज्ञासु निर्मल वचनका महिमा सुनके प्रसन्न होता है ।

हे रामजी ! तुम परमपात्रहो, अरु मेरेवचन परमउत्तम हैं यह महारामायण मोक्षोपायक शास्त्र है, सो आत्मबोधका परमकारण है,अरु परमपावन वाक्यकी सिद्धताहै,अरु युक्तियुक्तार्थ वाक्यहैं अरु नानाप्रकारके दृष्टांत कहेहैं,जिनके बहुतजन्मके पुण्य आय इकट्ठे होते हैं,तिनको कल्पवृक्ष मिलता है. सो फलकरझुक पडता है,तब तिसको यह शास्त्र श्रवण होताहै,अरु नीचको इनका श्रवण प्राप्त नहीं होता है,उसकी वृत्ति इनकेश्रवणमें नहीं आतीहै,जैसे धर्मात्मा राजाकीइच्छा न्यायशास्त्रके श्रवणमें होती है,अरुजो पापात्माराजा

है, तिसकी इच्छा नहीं होती: हे रामजी। तैसे पुण्य-वानकी इच्छा श्रवणमें होती है, अरु अधमकी इच्छा नहीं होती, जो कोई मोक्षोपायक यह रामायणका अध्ययन करैगा, अथवा निष्काम संतके मुखतें श्रद्धायुक्त श्रवण करैगा, अरु आदितें लेकर अंतपर्यंत एकत्रभाव होकर विचारैगा, तब तिसका संसारभ्रम निवृत्त हो जावैगा, जैसे जेवरीके जाननेतें सर्पका भ्रम दूर होजाता है, तैसे अद्वैतात्मा तत्त्वके जाननेतें तिसका संसारभ्रम नष्ट हो जावैगा।

सो इस मोक्षोपायक शास्त्रके बत्तीस सहस्र श्लोक हैं, अरु षट् प्रकरण हैं।

प्रथम वैराग्यप्रकरण है, सो वैराग्यका परमकारण है. हे रामजी। मरुस्थलमें वृक्ष नहीं होता, परंतु बडी वर्षा होवै तब तहां वृक्ष होता है, तैसे अज्ञानीका हृदय मरु-स्थलकी नांई है, तिसमें वैराग्यरूपी वृक्ष नहीं होता, परंतु यह शास्त्ररूपी जो बडी वर्षा होवै, तिसकर वैरा-ग्यरूपी वृक्ष उत्पन्न होताहै, तिसके एक सहस्र पांचसौ श्लोक हैं, तिसके अनन्तर.

मुमुक्षुव्यवहारप्रकरण है, तिसमें परमनिर्मल वचन हैं, जिसकरके मलिन मणि हुई ताका मार्जन कियेतें उज्ज्वल हो जाती है, तैसे यह वचनतें ज्ञानीका हृदय निर्मल होताहै, अरु विचारके बलतें आत्मपद पावनेको

समर्थ होता है, तिसके एक सहस्र श्लोक हैं, तिसके अनंतर.

उत्पत्तिप्रकरण है,तिसके पंच सहस्र श्लोकहैं, तिसमें बडी सुंदर कथा दृष्टांतसहित कही है, जिस बिचारतें जगतका सत्यताभाव मनतें चलायमान रहता है,अर्थ यह जो जगतका अत्यंत अभाव जान परता है, हे रामजी। यह जगतमें जो मनुष्य, देवता दैत्य, पर्वत, नदी आदी,स्वर्गलोक,पृथ्वी,आपू,तेज, वायु,आकाश आदि स्थावर जंगम भासताहै,सो अज्ञानकरकेहै,अरु इसकी उत्पति कैसे भई है, जैसे जेवरीमें सर्प होता है अरु छीपमें रूपा होता है, अरु सूर्यके किरणमें जल दिखता है, आकाशमें तरुवर दिखता है,औ जैसे दूसरा चंद्रमा दिखता है, जैसे गंधर्वनगर भासते हैं, मनोराज्यकी सृष्टि भासतीहै, अरु संकल्पपुर होता है, अरु सुवर्णमें भूषण होता है,समुद्रमें तरंग होता है, आकाशमें नीलता दिखतीहै, जैसेनोकोंमेंबैठेतें किनारेके वृक्ष पर्वत चलते दृष्ट आते हैं. अरु बादरके चलतें चंद्रमा धांवता दिखता है, औ स्तंभमें पूतली भासती है,भविष्यत नगरोंत आदि लेकर असत्य पदार्थ जैसे सत्य भासतेहैं,जैसे सब जगत् आकाशरूप है, अज्ञानकरके अर्थाकार भासता है,सो अज्ञानकरके उत्पत्ति दिखाती है, अरु ज्ञानकरके लीन हो जाता है, जैसे

निद्रामें स्वप्नसृष्टि की उत्पत्ति होती है, अरु जागेतें निवृत्त हो जाती है, तैसे अविद्याकरके जगतकीउत्पत्ति होती है, अरु सम्यक्ज्ञान करके निवृत्त हो जाती है, सो अविद्या कछु वस्तुहू नहीं, सर्व ब्रह्म चिदाकाशरूप है, सो शुद्ध है, अनंत है, परमानन्दस्वरूप है,तिसमेंन जगत उपजताहै, न लीन होता है, क्योंकी त्यों आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है; तिसमें जगत ऐसा है; जैसे भीतमें चित्र होता है; जैसे स्तंभमें पूतरियां होती हैं, अरु हुवेबिना भासती हैं, तैसे यह सृष्टि मनमें रही है, वास्तवतें कछु बनी नहीं, सब आकाशरूप है, जब चित्तसंवेदन स्पंदरूप होता है तब नानाप्रकारका जगत होयके भासता है, अरु जब निस्पंद होताहै,तब जगत मिट जाता है; इस प्रकार जगतकीउत्पत्ति कही है तिसके अनंतर,

स्थितिप्रकरण है, तिसमें जगतकी स्थिति कही है, जैसे इन्द्रका धनुष्य आकाशरूपहै औ अविचारकरके रंगसहित भासता है, जैसे सूर्यकी किरणमें जल भासता है, जैसे जेवरीमें सर्प भासता है, सो सब सम्यक् दृष्टिकरके निवृत्त होताहै, तैसे अज्ञान करके जगतकी प्रतीति होती है; सो मनोराज्यकरके जगत रचि लेता है, सो कछु उत्पन्न हुवा नहीं है,तैसे यह जगत संकल्पमात्र है, जबलग मनोराज्य है, तबलग उह नगर

होता है, जब मनोराज्यका अभाव हुवा; तब नगरका अभाव होजाता है, जबलग अज्ञान होता है तबलग जगतकी उत्पत्ति होती है, जब संकल्पका लय हुवा, तब जगतका अभाव हो जाता है, जैसे ब्रह्माके दश पुत्रकी सृष्टि संकल्पकरके स्थित भई, तैसे यह जगत भी है, कोउ पदार्थ अर्थरूप नहीं. हे रामजी ! इस प्रकार स्थितिप्रकरण कह्या है, तिसके तीन सहस्त्र श्लोक हैं, तिसके विचारकरके जगतकीसत्यता जातरहतीहै, तिसके अनंतर ।

उपशमप्रकरण हैं, तिसके पंच सहस्त्र श्लोकहैं, तिसके विचारतें अहंममत्वादिक वासना लीन हो जातीहै, जैसे स्वप्नतें जागेतें वासना जात रहती है, तैसे विचारकियेतें अहंतादिक वासना लीन हो जाती है, काहेतें जोउसके निश्चयमें जगत नहीं रेहता, जैसे एक पुरुष सोयाहै, तिसको स्वप्नमें जगत भासता है, औ उसके निकटजो जागृतपुरुषहै तिसकेस्वप्नका जगत आकाशरूप है, जब आकाशरूप हुवा तब वासनाकैसे रहे? जब वासनानष्ट भई, तब मनका उपशम हो जाता है, तब देखने मात्र उसकी सब चेष्टा होती है, औ इसके मनमें अर्थरूपइच्छा नहीं होती, जैसी अग्निकीमूर्ति देखनेमात्र होतीहै, अर्थाकार नहीं होती, तैसे उसकी चेष्टा होतीहै. हे रामजी ! जब मनतें इच्छा नष्ट होती है, तब मन भी निर्वाण हो

जाता है, जैसे तेलतें रहित दीपक निर्वाण होता है, तैसे इच्छातें रहित मन निर्वाण होता है, इस प्रकार उपशम-प्रकरण है, तिसके अनंतर।

निर्वाणप्रकरण है, जो शेष है तिसमें परम निर्वाणवचन कहे हैं, अज्ञान करके चित्त अरु चित्तका संबंध है, सो विचार कियेतें निर्वाण हो जाता है, जैसे शरत्काल में मेघके अभावतें शुद्ध आकाश होता है; तैसे पुरुष विचार-करके निर्मल होता है. हे रामजी! अहंकाररूपी पिशाच है, सो विचार करके नष्ट होता है, जेती कछु इच्छा-स्फूर्ति है, सो निर्वाण होजाती है; जैसे पत्थरकी शिला स्फुरनेतें रहित होती है; तैसे ज्ञानवान इच्छातें रहित होता है, तब जेती कछु जगतकी यात्रा है, सो इसको होय चुकती है, जो कछु करना है सो कर चुकता है. हे रामजी! शरीर होत हीं उह पुरुष अशरीरी होजाताहै, अरु नानाप्रकारका जगत उसको नहीं भासजो, जगत की नेततें वह रहित होता है, अहममत्वादिक तमरूप जगत तिसको नहीं भासता है, जैसे सूर्यको अंधकारदृष्टि नहीं अवता, तैसेउसको जगत दृष्टिमें नहींआता; अरु बडे पदको प्राप्तहोताहै, जैसे सुमेरु पर्वतकेकिस कोनेमें कमल होता है तिसके पर भौंरे स्थित रहतेहैं, तैसे ब्रह्माके किसी कोने में जगत तुषाररूप है अरु जीवरूपी भौंरे तिसपर स्थित हैं, उह पुरुष अचिंत्य चिन्मात्र है, रूप

अवलोकन, मन तिसका आकाशरूप हो जाता है तिस पदको वह प्राप्त होता है, जिस पदकी उपमायोग्य ब्रह्मा विष्णु, रुद्र, कहनेको समर्थ नहीं; ऐसे अनुपमताके सदृश कोउ नहीं है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षु प्रकरणे पदूपूरख्या विचरणं नाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

अष्टादशः सर्गः १८

अथ दृष्टान्तवर्णनं ।

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! यह परम उत्तम वाक्य उसको विचारनहारा उत्तम पदको प्राप्त होता है, जैसे उत्तम खेतमें उत्तम बीज बोयेतें उत्तम फलकी उत्पत्ति होती है, तैसे इसको विचारनहारा उत्तम पदको प्राप्त होता है, यह वाक्य कैसे हैं, जोयुक्ति पूर्वक वाक्य हैं, औ युक्तिते रहित वाक्य आर्ष भी होहिं, तौ तिनका त्याग कीरयें, औ युक्तिपूर्वक वाक्य अंगीकार कीरयें। हे रामजी ! जो ब्रह्माके बचन युक्ति तें रहित होहिं तब तिनको भी सूके तृणकी नांई त्याग कीरयें. अरु बालक के बचन युक्तिपूर्वक होहिं तौ तिनका अंगीकार कीरयें; औ पिताके कूपका खारा जल होवे तौ उसका

त्यागकीरियें, औ निकट मिष्टजलका कूपहोवै तबतिनका पान करिये, तैसे बडे अरु छोटेका विचार न करियें, युक्तिपूर्वक बचनका अंगीकार करना. हे रामजी! मेरे बचन सब युक्तिपूर्वक हैं, अरु बोधके परम कारण हैं, जो पुरुष एकाग्र होयके इस शास्त्रको आदितें अंतपर्यंत पढे अथवा पंडितसों श्रवण करके बिचारै, तब तिसकी बुद्धि संस्कारित होवे।

प्रथम वैराग्यप्रकरणको बिचारैगा, तबवैराग्य उपजैगा जेते कछु जगतके रमणीय भोगपदार्थ हैं, तिनकोंबिरस जानैगा, अरु किसी पदार्थकीबांछा न करैगा, जबभोगमें वैराग्य होता है, तब शांतिरूप आत्मतत्वमें प्रतीति होती है, जब बिचारकरके बुद्धि संस्कारित होवैगी, तब शास्त्रकासिद्धांत बुद्धिमेंआयास्थितहोवैगा, औ संसारके बिकाररहितबुद्धिनिर्मल होवैगी, जैसेशरत्कालमेंबादरके अभाव हुवेतें आकाश सब ओरतें स्वच्छ होता है, तैसे बुद्धिनिर्मल होवैगी, बहुरि आधिव्याधिकी पीडाउसको न होवैगी, हे रामजी! ज्यौं ज्यौंविचारदृढहोवैगा, त्यौं त्यौं शांतात्मा होवैगा. तातें जेते कछु संसारके यत्नहैं, तिनका त्यागकरइसशास्त्रको वारंवारविचारतेंचैतन्यसत्ता उदयहोवैगी त्यौंत्यौं लोभमोहादिक विकारकीसत्ता नष्ट होवैगी, जैसे ज्यौं ज्यौं सूर्यका उदय होता है, त्यौं त्यौं अंधकार नष्ट होता है, तैसेविकारनष्ट होवैगा, तब

तिस पदकी प्राप्ति होवैगी, जिसके पाये संसारके क्षोभ मिट जायंगे, जैसे शरत्कालमें मेघ नष्ट होजाता है, तैसे संसारके क्षोभ मिट जाते हैं ।

हे रामजी! ज्ञानवान् पुरुषको संसारके राग द्वेष बेधी नहीं शकते, जैसे जिन पुरुषनें कवच पहिन्या होय तिसको बाण बेधी नहीं शकते. उसका भोगकी इच्छा नहीं रहती, जब बिषयभोग विद्यमान आयरहैं, तब तिनको विषयभूत जानके बुद्धि ग्रहण नहीं करती, अर्थ जान कर बाहिर नहीं निकसती, अंतर आत्मामेंई स्थित रहती है, जैसे पतिव्रता स्त्री अपने अंतःपुरतें बाहिर नहीं निकसती, तैसे ताकी बुद्धि अंतरतें बाहिर नहीं निकसती, हे रामजी! बाहिरतें तो उह भी प्रकृतिजन्यकी नांई दृष्ट आते हैं, जो कछु अनिच्छित प्राप्त होतहैं, तिनको भुगतता हुवा दृष्टि आता है, औ अंतरतें उसको राग द्वेष नहीं फुरता,

हे रामजी! जेता कछु जगतकी उत्पत्ति प्रलयका क्षोभ है, सो ज्ञानवानको नष्ट करनहीं सकता, जैसे चित्रकी बेलीको अंधी चलायन हीं शकती, तैसे उसको जगतका दुःख चलाय नहीं शकता, अरु संसारकी ओरतें जड होजाता है, वृक्षकी नांई गंभीर हो जाता है, अरु पर्वतकी नांई स्थिर हो जाता है, अरु चंद्रमाकी नांई शीतल हो जाता है, हे रामजी! सो आत्मज्ञानकरके ऐसे पदको प्राप्त होताहै.

जिसके पायेतें और कछुपाव ने योग्यनहीं रहता, आत्म
ज्ञान का कारण यह मोक्षोपायशास्त्रहै,जामें नानाप्रका-
रके दृष्टांतकहे हैं , जोवस्तुअपरिच्छिन्नहोवे, अरु देख-
नेमें न आई होई, तिसका न्याय देखनेमें होवै, तिसको
दृष्टांतकर विधिपूर्वक समुझावै उसका नाम दृष्टांत.हे
रामजी । यह जगत कार्यकारणतें रहित है, अरु आत्मा
जगतकी एकता कैसे होवैं, तातें जो मैं दृष्टांत कहौंगा,
तिसका एक अंश अंगीकारकरना सर्वदेशकर अंगीकार
नहीं करना. हे रामजी । कार्यकारण की कल्पना मूर्खने
करी है, तिसको निषेधनेनिमित्त मैं स्वप्नदृष्टांतकहौंहौं.
सो समुझनेतेंतेरे मनकासंशयनष्ट हो जावैगा, दृग अरु
दृश्यका भेद मूर्खकोभासताहै, तिसके दूर करनेकेअर्थ
स्वप्नदृष्टांतकहौंगा,तिसकेविचारनेकरि मिथ्याविभागक-
ल्पनाका अभाव होताहै. हे रामजी । ऐसी कल्पनाका
नाशकर्तायह मेरामोक्षउपायशास्त्र है, जोपुरुषआदितें
अंतपर्यंत बिचारैगासोसंस्कारी होवैगा, जोपदपदार्थके
जाननहारा होवै, अरुदृश्यको वारंबार बिचारै तबति-
सका दृश्यभ्रम नाशपावै,इसशास्त्रके बिचारविषेअवर
किसी तीर्थ, तप दान आदिककी अपेक्षा नहीं; जहां
स्थान होवे तहां बैठे , जैसा भोजन गृहविषे होवे,तैसा
करै, अरु वारंबार इसका बिचारकरे,तबअज्ञान नष्ट हो
जावै, अरु आत्मपदकी प्राप्तिहोवै. हेरामजी।यहशास्त्र

प्रकाशरूप है, जैसे अंधकार विषे पदार्थ नहीं दिखता, अरु दीपकके प्रकाशकर चक्षुसहित दिखताहै,तैसेशास्त्ररूपी दीपकविचाररूपीनेत्रसहित होवे, तबआत्मपदकी प्राप्ति होवै ।

हे रामजी । आत्मज्ञान विचारविनावर अरु शापकरि प्राप्त नहीं होता,जबविचारकरि दृढअभ्यास करीये तब प्राप्त होता है, तातें मोक्षउपाय जो परमपावन शास्त्र, तिसके विचारतें जगतभ्रम नष्ट हो जावैगा, जगतको देखते देखते जगतभाव मिट जावैगा, जैसे सर्पकीमूर्ति लिखी होती है, अरु अविचार करकेतिसमें भयपाताहै, जब विचार करि देखियें तब सर्पभ्रम मिट जाताहै, सो सर्पकाआकार दृष्ट आताहै, परंतु उसकाभय मिटजाता है,तैसे यह जगतभ्रम विचार कियेतें नष्ट हो जाताहै, अरु जन्ममरणका भय नहीं रहता.हे रामजी ।जन्ममरणका भयभी बड़ा दुःख है,परंतुइस शास्त्रकेविचारतें नष्ट हो जाता है, जिनहुनें इसका बिचार त्यागा हैसो माताके गर्भविषे कीट होवैगे, अरु कष्टतें नहीं छुटेंगे, अरु विचारवान पुरुष आत्मपदको प्राप्त होवैगा अरु जोश्रेष्ट ज्ञानीहै,तिसको सृष्टिअनंत है, तिसकोअपनारूप भासता है; कोउ पदार्थआत्मातें भिन्ननहींभासता, जैसे जिसको जलका ज्ञान हुवाहै, तिसकोलहरीआवर्त सब जलरूपही भासता है, तैसे ज्ञानवानकोसबआत्म-

रूप भासताहै, अरु इंद्रियहुएके इष्ट अनिष्टकी प्राप्तिमें इच्छा दोष नहीं करता, सदा एकरस मनके संकल्पतें रहित शांतिरूप होता है, जैसे मंदराचल पर्वतकेनिकसेतें क्षीरसमुद्र शांतिको प्राप्त भया, तैसें संकल्पविकल्परहित यह पुरुष शांतिरूप होता है ।

हे रामजी ! अवर जो तेज होताहै, सो दाहक होता है, परंतु ज्ञानरूपी तेज जिस घटविषे उदय होताहै, सो शीतल शांतिरूप होता है, बहुरि तिसविषे संसारका बिकार कोउ नहीं रहता, जैसे कलियुगविषे शिखावाला तारा उदय होता है, सो कलियुगके अभाव हुये नहीं उदय होता; तैसे ज्ञानवानके चित्त में बिकार उत्पन्न नहीं होता ।

हे रामजी! संसारभ्रम आत्माके प्रमादतें उत्पन्न होता है, सो आत्मज्ञानके प्राप्त भये यत्नबिना शांत होजाता है, फूल पत्र काटनेतें भी कछु यत्न होता है, परंतु आत्मा के पावनेमें कछु यत्न नहीं होता; काहेतें जो बोधरूपी बोधही करके जानता है. हे रामजी ! जो जानते मात्र ज्ञानस्वरूप है, तिसमें स्थित होनेका क्या यत्न है; आत्मा शुद्ध अद्वैतरूप है; अरु जगत भ्रममात्र है, जो पूर्व अपर बिचार कियेतें तिसकी सत्यता न पाइये तो तिसको भ्रममात्र जानियें, अरु पूर्व अपर बिचार कियेंते सत्य होवै, तिसका का जानिये. सोयह जगतकी सत्यता आदिअंतविषेनहीं

है, तातें स्वप्नवत् है,जैसे स्वप्न आदि अंतमें कछुहैनहीं, तैसे जाग्रत भी आदि अंतमें नहीं है, तातें जाग्रत स्वप्न दोनों तुल्य हैं ।

हे रामजी ! यह वार्ता बालक भी जानता है जो आदि अंतमें जिसकी सत्यता न पाइयें,सो स्वप्नवत् है, जो आदि भी न होवै अरु अंत भी न रहे,तिसको मध्यमें भी असत्य जानियें, तिसविषे दृष्टांत कहे हैं, संकल्पपुरीवत् ध्यान् नगरकी नांई स्वप्नपुरीकी नांई, वर शापकरके जो उपजता है, तिसकी नांई औषधतें उपजकी नांई इस पदार्थकी सत्यतान आदि होतीहै, न अनंतर होती है, अरु मध्यमें जो भासता है, सो भी भ्रममात्र है, तैसे यह जगत अकारण है, अरु कार्य कारणभावसंबंधमेंभासताहै, तौ कार्यकारणजगत्भया, अरु आत्मसत्ता अकारण है,जगत साकारहैअरुआत्मा निराकार है ।

इस जगतका दृष्टांतजो आत्माविषे देऊंगा तिसका तुम एक अंश ग्रहण करना,जैसे स्वप्नकी सृष्टि होती है, तिसका पूर्व अपर भाव आत्मतत्त्वविषे मिलताहै, काहेतें जो अकारण है, मध्यमात्रका दृष्टांत नहीं मिलता,काहेतें जो उपमेय अकारण है तौ तिसकाइस समान दृष्टांत कैसे होवे?तातें अपने बोधके अर्थ दृष्टांतका एक अंश ग्रहण करना,हे रामजी!जो विचारवान्

पुरुष हैं, सो गुरु अरु शास्त्रके श्रवणकरके सुखबोधके अर्थ दृष्टांतका एक अंश ग्रहण करते हैं, हे रामजी! तिसको आत्मतत्त्वकी प्राप्ति होती है; काहेतें जो सार-ग्राहक होते हैं; अरु जो अपने बोधके अर्थ दृष्टांतका एक अंश ग्रहण नहीं करते, अरु वाद करते हैं, तिनको आत्मतत्त्वकी प्राप्ति नहीं होती-तातें दृष्टांतका एकअंश ग्रहण करना, सर्व भावकरके दृष्टांतको नहीं मिलावना, अरु पृथकको देखिकरि तर्क नहीं करना, एक अंश दृष्टांतका आत्मबोधके निमित्त सारभूत ग्रहण करना. जैसे अंधकारमें पदार्थ पड्या होवै, सो दीपकके प्रकाशसों देख लेना, जो दीपककेसाथ प्रयोजन है; औ ऐसे नहीं कहना जो दीपक किसका है अरु तेलबाती कैसा है, अरुकिस स्थानका है; दीपकका प्रकाशही अंगीकार करना, तैसे एक अंश दृष्टांतका आत्मबोधके निमित्त अंगीकार करना।

हे रामजी! तिसकरि वाक्अर्थ सिद्धि होवै, सोवचन लेना, औ जिसकर वाक्यार्थ सिद्ध न होवै, तिसका त्याग करना, जो बचन अनुभवको प्रकट करे, तिसका अंगीकार करना, जोपुरुष आपनबोधके निमित्तबचनको ग्रहण करता है सोई श्रेष्ठ है, अरु जो वादके निमित्त ग्रहण करता है, सो चोंगचुंच है, उह अर्थको सिद्ध नहीं करता, जो कोउ अभिमानको लेकरि कहता है, सो ह-

स्तिकी नांई शिरपर माटी डारता है,तिसका अर्थ सिद्ध नहीं होता अरुजो अपने बोधके निमित्तवचनकोग्रहण करता है,अरु विचारकरि तिसका अभ्यास करता है, तब उह आत्मशांतिको पावता है.हे रामजी!आत्मपद पावने निमित्त अवश्यमेव अभ्यास चाहिता है,जब शम, विचार,संतोष;अरु संतसमागमकरिकै बोधकी प्राप्ति होवै, तब परमपदको पावता है.

हे रामजी! तिसका दृष्टांतका कहता है,सोएकदेश लेकरि कहता हैसर्वमुखकहनेकरि अखंडताका अभाव होय जाता है;अरु जोसर्वमुखदृष्टांत मुख्यको जानियें सो सत्यरूप होताहै,ऐसे तो नहीं,आत्मा सत्यरूप है, कार्यकारणतें रहित शुद्ध चैतन्य है, तिसके जनावनेनि मित्तकार्यकारणजगतकादृष्टांत कैसेदीजिये ?यहजग- तका जो दृष्टांत कहता है,सो एक अंश लेकेकहताहै, अरु बुद्धिमान भी दृष्टांतके एक अंशको ग्रहण करतेहैं, जो श्रेष्ठ हैं सो अपने बोधके निमित्त सारको ग्रहण करते हैं .अरु जिज्ञासुको भी यही चाहिता है, जोअपने बोधके निमित्त सारको ग्रहण करै,करु बाद न करै, जैसे क्षुधार्थीको चावलपाक आय प्राप्त होवै,तब भोजन कर- नेका प्रयोजन है, अरुउसकीउत्पत्ति अरुस्थितिकाबाद करना व्यर्थ है.

हे रामजी ! वाक्यसोई है,जो अनुभवको प्रगट करै,

अरु जो अनुभवको प्रगट न करै तिसका त्याग करना; जो स्त्रीका वाक्य होवै अरु आत्मअनुभवको प्रत्यक्षकरै तिसका ग्रहण करना, अरु परमगुरु वेदवाक्यहोवै औ अनुभवको प्रगट न करै, तिसका त्याग करना, जबलग विश्रामको नहीं पाया, तबलग विचार कर्तव्य है, विश्रामका नाम तुर्यपद है, जब विश्रामकी प्राप्ति भई तब अक्षय शांति होती है; जैसे मंदराचल पर्वत के छोभतें क्षीरसमुद्र शांत रह्या है, तैसे शांति होतीहै. हे रामजी! तुर्यपदसंयुक्त पुरुषहै, तिसको श्रुति स्मृति उक्त कर्महु के करनेकरि प्रयोजनसिद्ध कछु नहीं होता; अरु न करनेकरि कछु प्रत्यवाय नहीं होता; सदेह होवै भावै विदेह होवै, गृहस्थ होवै भावै विरक्तहोवै, तिसको कर्त्तव्य कछु नहीं, वह पुरुष संसारसमुद्रतें पारहै हुवा है ।

हे रामजी । उपमेयको उपमाकरि जानताहै, सो एक अंशको ग्रहण करि जानता है, तब बोधकी प्राप्ति होती है, अरु जो बोधतें रहित है, सो मुक्तिको प्राप्त नहीं होता, वह व्यर्थ वाद करता है ।

हे रामजी ! शुद्ध स्वरूप आत्मसत्ता जिसके घटाविषे विराजमान है तिसको त्यागकरि अवर विकल्प उठावता है, सो चेतनघातक है अरु मूर्ख है ।

हे रामजी ! जो अर्थ प्रत्यक्ष है, सो प्रमाण मानने योग्य है, अवर जो अनुमान, अर्थापत्ति, आदि प्रमाणमों ति-

सकी सत्ता प्रत्यक्ष करि होती है। जैसे सब नदीका अधिष्ठानसमुद्रहै,तैसेसबप्रमाणहुका अधिष्ठानप्रत्यक्षप्रमाण है, सो प्रत्यक्ष क्या है सो श्रवण करहु।

हे रामजी। चक्षुरूपी ज्ञान संमत संवेदन है, तिस चक्षुकरके विमानहोताहै,तिसका नाम प्रत्यक्ष प्रमाणहै, तिनप्रमाणहुको बिपय करनेहारा जीवहै,अपने वास्तवस्वरूपके अज्ञानकरि अनात्मारूपी दृश्य बन्याहै,तिस विषे अहंकृति करके अभिमान भया है,अभिमान सब दृश्य है, तातें हेयोपादेयबुद्धि भई है, अरु राग द्वेषकरके पड्या है; आपको कर्त्ता मानीकरि बहिर्मुख हुवा भटकता है।

हे रामजी। जब बिचारकरके संवेदन अंतर्मुखी होवै, तब आत्मपद प्रत्यक्ष होता है, अरु निजभावको प्राप्त होताहै, परिच्छिन्नभाव नहीं रहता,शुद्ध शांतिको प्राप्त नहीं होता,जैसेस्वप्नतें जागेतेंस्वप्नका शरीरअरुदृश्यभ्रम नष्ट हो जाता है,तैसे आत्माकेप्रत्यक्ष हुवेतें सब भ्रम मिट जाता है, अरु शुद्ध आत्मसत्ता भासतीहै,हे रामजी। यहि जो दृश्य अरु द्रष्टा है, सो मिथ्याहै, जो द्रष्टा है,सो दृश्य होता है, अरु जो दृश्य है, सो द्रष्टा होता है,सो यह भ्रम मिथ्या आकाशरूप है, जैसे पवनमें स्पंदशक्ति रहतीहै,तैसे आत्मामें संवेदन रहतीहै, जब संवेदन स्पंदरूप होतीहै,तब दृश्यरूप होयके स्थित

होती है. स्वप्न में अनुभव सत्ता दृश्यरूप होयकेस्थित होती है, तैसे यह दृश्य है, तातें सब आत्मसत्ता है,ऐसें विचार करि आत्मपदकों प्राप्त होवहु, अरु जोऐसे विचार करके आत्मपदको प्राप्त न होय सको, तब अहंकार जो उल्लेख फुरता है, तिसका अभाव करौ, पाछेजो शेषरहैगा सो शुद्धबोध आत्मसत्ता है, जब शुद्ध बोधको तुम प्राप्त होहुगे, तब ऐसे चेष्टा पडी होवैगी, जैसे यंत्रकी पुतली संवेदनविना चेष्टा करती है, तैसे देहरूप पुतलीका चालनहारा मनरूपी संवेदन है, तिस बिना पडी रहैगी, परंतु अहंकृतीका अभाव होवैगा, ताते चलकरके तिस पद पावने का अभ्यास करो, जो नित्य शुद्ध शांत रूप है।

हे रामजी! अवर दैवशब्द को त्याग करी अपना पुरुषार्थ करो, अरु आत्मपद को प्राप्त होहु, कोउ पुरुषार्थमें सूरमाई सो आत्मपदको प्राप्त होता है, अरुजो नीचपुरुषार्थ का आश्रय करता है, सो संसार समुद्रमें डूबता है।

इतिश्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षु प्रकरणे दृष्टांतम० नामाष्टादश सर्गः॥ १८॥

एकोनविंशः सर्गः १९

अथ आत्मप्राप्तिवर्णनं

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! जब सत्संग करके यह पुरुष शुद्धबुद्धि करै तब आत्मपद पावनेको समर्थ होवै प्रथम सत्यसंग यह है, जिसकी चेष्टा शास्त्रहुके अनुसार होवै, तिसका संग करै! तिसके गुणहुको हृदय विषे धरै बहुरि महापुरुषहुके शम, संतोष आदिक गुणहुका आश्रय करै, शमसंतोषादिककरि ज्ञान उपजता है जैसे मेघहु करि अन्न उपजता है अरु अन्नकरि जगत होता है, अरु जगत हुतें मेघ होता है, तैसे शम संतोषभी है, शमादिक गुण अरु आत्मज्ञान परस्पर होता है, शमादिक गुणकरि ज्ञान उपजता है, अरु आत्मज्ञान करि शमादिक गुण आय स्थित होते हैं. जैसे बडे तालकरि मेघ पुष्ट होता है, अरु मेघकरि ताल पुष्ट होता है. तैसे शमादिक गुणकरि आत्मज्ञान होता है, आत्मज्ञान तें शमादि गुण पुष्ट होते हैं; ऐसे विचारकरके शमसंतोषादिक गुणोंका अभ्यास करहु तब शीघ्रही आत्मतत्वको प्राप्त होवैगा हे रामजी! ज्ञानवान पुरुषको शमादिक गुण स्वाभाविक आय प्राप्त होते हैं, अरु जिज्ञासुको अभ्यास करके प्राप्त होते हैं अरु जैसे धान्यकी पालना स्त्री करती है ऊंचे शब्द करती

है, जिसकरि पक्षीहुको उड़ावती है; जब इस प्रकार पालना करती है, तब फलको पावती है, तिसतें पुष्ट होती है, तैसे शमसंतोषादिकके पालनेकरि आत्मतत्त्वकी प्राप्ति होती है।

हे रामजी ! इस मोक्षोपाय शास्त्रको आदितें लेकरि अंतपर्यंत विचारै तब भ्रांति निवृत्त होवै, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, सर्व पुरुषार्थ कर सिद्ध करते हैं, परंतु यह मोक्षउपायका शास्त्र परम कारणहै, जो शुद्धबुद्धिमान पुरुष इसको विचारैगा, तिसको शीघ्रही आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी, तातें इस मोक्षउपाय शास्त्रका भली प्रकार अभ्यास करो।

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे आत्मप्राप्तिवर्णनं नाम एकोनविंशतितम सर्ग । १९ ।

सं योगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणं द्वितीयम् ॥२॥

मिलने का पता...
ला० पूरनमल बुकसेलर मथुरा।